खण्ड

2

बौद्ध ग्रन्थों के चीनी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद

इकाई 5

बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद 71

इकाई 6

बौद्ध ग्रन्थों के पूर्वीय भाषाओं में अनुवाद 87

खण्ड-2 का परिचय

तथ्य है कि भारत-चीन के व्यावसायिक आवागमन में चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ और बौद्ध धर्म के कारण दोनों देशों की नजदीकी बढ़ी, अनुवाद के जरिए वैचारिक आदान-प्रदान का क्रम चला। पहली सदी से बौद्ध धर्म का प्रसार भारत से चीन में होना शुरू हुआ और यह कन्फ्यूशियसवाद तथा ताओवाद का प्रभुत्व स्थापित होने से पहले तक चीन में काफी शक्तिशाली बना रहा। जिन भारतीय अनुवादकों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया, उनमें से प्रायः सब ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और वे चीन में ही बस गए, लेकिन चीन के जिन अनुवादकों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत अथवा पालि से चीनी में किया वे यात्री के रूप में भारत आए थे। उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत तथा पालि की शिक्षा ली, बौद्ध धर्म ग्रन्थों के चीनी अनुवाद में महारत हासिल की, भारत के बारे में ढेरों जानकारियाँ इकट्ठी कीं और चीन वापस हुए। ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि भारतीय अनुवादक अनुवाद सम्बन्धी कार्य से चीन गए, अर्थात बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए गए, और फिर वापस आ गए। इसलिए हमारे पास चीन के बारे में इस काल की बहुत कम जानकारी है लेकिन चीन में भारत के बारे में इस अवधि से सम्बन्धित काफी जानकारी है। तथ्य है कि बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अनुवाद के माध्यम से ही भारत और चीन एक दूसरे के करीब आए। भारत तथा चीन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध का बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान रहा है। प्रारम्भिक दौर में चीन में बौद्ध धर्म को किसी मजहब के रूप में नहीं, एक दर्शन के रूप में स्वीकृति मिली। उस जमाने में बौद्ध धर्म एक उत्कृष्ट शैक्षणिक दर्शन के रूप में जाना जाता था। पर शुरुआती दौर में बौद्ध धर्मग्रन्थों का अनुवाद कार्य कठिनाइयों से भरा था। चीनी शासकों ने बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना दूत भेज कर भारत से बौद्ध भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।

सन् 65-67 में चीन में बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद एक बड़ी चुनौती थी। भारत, एशिया के अन्य हिस्सों तथा चीन के विद्वानों ने मिलकर जिस प्रकार श्रमसाध्य ढंग से बौद्ध धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया उसे देखकर आज आश्चर्य होता है। भारत के अनेक विद्वान कठिन यात्रा कर चीन गए और इस कठिन कार्य को पूरा करने के लिए वहाँ कई वर्षों तक रहे। वहाँ उन्होंने चीनी भाषा सीखकर अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया। गैर चीनी विद्वानों में सबसे उल्लेखनीय नाम कुमारजीव का है। इसी प्रकार अनेक चीनी विद्वानों तथा यात्रियों ने जमीन और समुद्र के रास्ते कठिन यात्रा की और भारत पहुँचे। यहाँ कई वर्षों तक रहकर उन्होंने संस्कृत तथा पालि भाषा का ज्ञान अर्जित किया और इसके बाद बौद्ध धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। प्रारम्भिक बौद्ध अनुवादकों के लिए सबसे बड़ी समस्या थी नई घटनाओं को अपनी भाषा में अभिव्यक्त कर पाना। इसके लिए नए शब्द और नए चीनी संकेतों का निर्माण किया जाता था। इससे चीनी भाषा की सुन्दरता में और भी वृद्धि होती थी।

व्यक्तिवाचक संज्ञा के संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद में सबसे ज्यादा कठिनाई होती थी। बाद में बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद अधिक सटीक ढंग से होने लगा। सोलहवीं सदी के बाद अनुवाद के स्तर में अच्छा सुधार हुआ, इस दिशा में जापानी एवं तिब्बती विद्वानों तथा संन्यासियों ने भी बड़ा योगदान किया। बौद्ध धर्मग्रन्थों के बारे में उनकी समझ और जापानी भाषा में उनके अनुवाद ने भी अनुवाद-प्रक्रिया को बेहतर बनाने में मदद की।

भारतीय ग्रन्थों के चीनी अनुवाद से फिर कोरियाई और जापानी रूपान्तरण भी हुआ। यह कार्य सदियों तक चलता रहा। मंगोलिया, कोरिया, जापान, उत्तरी वियतनाम आदि देशों में जैसे-जैसे बौद्ध सम्प्रदायों का उदय हुआ, भाषाओं और बोलियों में अनूदित, रूपान्तरित और मूल ग्रन्थ भी प्रकाश में आए।

अनुवाद का इतिहास एवं परम्परा विषय पर अध्ययन करते हुए *बौद्ध ग्रन्थों के चीनी एवं भारतीय भाषाओं में अनुवाद* शीर्षक इस खण्ड में *बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद* और *बौद्ध ग्रन्थों का पूर्वीय भाषाओं में अनुवाद* दो इकाइयाँ हैं। इन दोनों इकाइयों में बौद्ध ग्रन्थों के चीनी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की परम्परा के उक्त सभी आयामों पर सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 5 बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 धर्म और व्यवसाय

5.3 अनुवादकों के सामने चुनौतियाँ

5.4 गैर-चीनी अनुवादक

5.5 कुमारजीव (सन् 344-413)

5.5.1 कुमारजीव : अनुवादक तथा शिक्षक

5.6 चीनी अनुवादक

5.7 बौद्ध पाठों के अनुवाद की समस्याएँ

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

यह इकाई बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद की परम्परा से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करने वाले शिक्षार्थियों को बौद्ध साहित्य के चीनी एवं अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद की परम्परा की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी।

इस इकाई में भारतीय तथा चीनी अनुवादकों द्वारा बौद्ध धर्म की पुस्तकों का पालि और संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद के दौरान सामने आने वाली समस्याओं के विषय में जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी। इसी क्रम में हम चीन में अनुवाद के माध्यम से बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में सारा जीवन अर्पित कर देने वाले निष्ठावान बुद्धिजीवियों के बारे में भी जानकारी हासिल करेंगे।

हम इस मिथक की भी पड़ताल करेंगे कि क्या भारत और चीन के बीच आपसी सम्बन्ध केवल बौद्ध धर्म पर ही आधारित था! तथ्य है कि व्यापार और व्यवसाय के लिए भारत-चीन के आवाजाही के क्रम में ही चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ। आवश्यकतानुसार यहाँ हम भारत-चीन व्यावसायिक सम्बन्धों के शुरुआती दौर की भी चर्चा करेंगे। इसी क्रम में बुद्ध तथा बौद्ध धर्म के बारे में जानकारी हासिल करेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार बौद्ध धर्म के कारण दोनों देशों की नजदीकी बढ़ी। दरअसल बौद्ध धर्म तथा बौद्ध धर्म ग्रन्थों की सही जानकारी के अभाव में यह चर्चा अधूरी रहेगी। इसके अलावा हम बौद्ध धर्म ग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद के क्रम में भारतीय और चीनी अनुवादकों के सामने आने वाली चुनौतियों के विषय में भी जानकारी हासिल करेंगे।

5.1 प्रस्तावना

बौद्ध धर्म में अनेक परम्पराएँ, मान्यताएँ तथा आचरण पाए जाते हैं, जो वस्तुतः महात्मा बुद्ध की शिक्षा पर आधारित हैं। पालि और संस्कृत में सिद्धार्थ गौतम, जो बुद्ध के नाम से जाने जाते हैं, का अर्थ होता है 'जाग्रत'। *त्रिपिटिक* (पालि अर्थ–तीन टोकरियाँ) के अनुसार बुद्ध का जन्म ई.पू. 563 के आस-पास लुम्बिनी में हुआ था, उनका पालन-पोषण कपिलवस्तु में हुआ। आज ये दोनों ही स्थान नेपाल में हैं।

उत्तर-पूर्वी भारत में बुद्ध-वचन के प्रचार-प्रसार का समय ई.पू. चौथी से छठी सदी माना जाता है। उनके अनुयायियों का मानना है कि बुद्ध एक सिद्ध पुरुष थे, जिन्होंने जीव मात्र को दुख से मुक्ति का मार्ग दिखाया और जीवन मरण के चक्र से निकल कर निर्वाण प्राप्ति का ज्ञान दिया।

इस बात को आज कभी-कभार ही याद किया जाता है कि भारत और चीन के बीच वैचारिक सम्बन्धों का इतिहास दो हजार साल से भी पुराना है, इस सम्बन्ध ने दोनों देशों के इतिहास एवं संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। इसकी थोड़ी बहुत चर्चा केवल बौद्ध धर्म के इतिहास पर काम करने वाले विद्वान ही करते हैं। पहली सदी से बौद्ध धर्म का प्रसार भारत से चीन में होना शुरू हुआ और यह कन्फ्यूशियसवाद तथा ताओवाद का प्रभुत्व स्थापित होने से पहले तक चीन में काफी शक्तिशाली बना रहा। कन्फ्यूशियसवाद और ताओवाद का आज भी चीन में प्रभुत्व बरकरार है। दरअसल कन्फ्यूशियसवाद को धर्म के बजाय एक दर्शन के रूप में देखना अधिक उपयुक्त होगा। कन्फ्यूशियस एक प्रख्यात विचारक थे, जो चीन के शासकों को शासन के गुर सिखाते थे, ताकि वहाँ की जनता को राजा के नियन्त्रण में रखा जा सके। कन्फ्यूशियस के विचारों का चीन में वही स्थान है जो भारत में चाणक्य का। पहले ही कहा गया कि पहली सहस्राब्दी में भारत-चीन के पारस्परिक सम्बन्ध का एक मात्र कारक धर्म रहा। दुनियाँ की एक तिहाई आबादी के इतिहास को बेहतर तरीके से समझने के लिए भारत-चीन सम्बन्धों की गहराई से पड़ताल आवश्यक है। इन दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध समसामयिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

भारत-चीन के सम्पर्क का प्रमुख आधार निस्सन्देह धर्म रहा है। दोनों देशों के वैचारिक आदान-प्रदान के पीछे बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है। किन्तु बौद्ध धर्म के योगदान को केवल धर्म तक सीमित करना सही नहीं होगा। ध्यान देने की बात है कि विज्ञान, गणित, साहित्य, भाषा विज्ञान, स्थापत्य-कला, चिकित्सा विज्ञान तथा संगीत पर भी बौद्ध धर्म का गहन प्रभाव है।

बौद्ध धर्म से प्रभावित अनुवाद की इस प्रक्रिया का एक और भी रोचक पहलू है। जिन भारतीय अनुवादकों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया, उनमें से प्रायः हरेक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और वे चीन में ही बस गए, लेकिन चीन के जिन अनुवादकों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत अथवा पालि से चीनी में किया वे यात्री के रूप में भारत आए थे। उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत तथा पालि की शिक्षा ली, बौद्ध धर्म ग्रन्थों के चीनी अनुवाद में महारत हासिल की, भारत के बारे में ढेरों जानकारियाँ इकट्ठी कीं और चीन वापस चले आए। ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि भारतीय अनुवादक अनुवाद सम्बन्धी कार्य से चीन गए, अर्थात बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए गए, और फिर वापस आ गए। इसीलिए हमारे पास चीन के बारे में इस काल की बहुत कम जानकारी है लेकिन चीन में भारत के बारे में इस अवधि से सम्बन्धित काफी जानकारी है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत और चीन बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अनुवाद के माध्यम से ही एक दूसरे के करीब आए और आपसी रिश्तों के शुरुआती दौर में एक दूसरे के बारे में बहुत-सी जानकारियों से अवगत हुए।

5.2 धर्म और व्यवसाय

चूँकि बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में व्यापार एवं वाणिज्य का बड़ा योगदान रहा है, इसलिए बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अनुवाद की चर्चा करते हुए संक्षेप में व्यापार एवं वाणिज्य की चर्चा भी जरूरी है। भारत तथा चीन के बीच व्यापार एवं वाणिज्य की चर्चा ई.पू. सातवीं सदी की चीनी साहित्यिक कृतियों में मिलती है। बंगाल में ताम्रलिप्ति एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था, जहाँ से ईस्वी सन् 77 में चीन, लंका, जावा तथा सुमात्रा के साथ व्यापार होता था। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि ई.पू. काल में भारत तथा चीन के बीच दक्षिणी चीन खाड़ी के रास्ते व्यापार होता था। चीनी दस्तावेजों तथा यूनानी भूगोलविद् टोलेमी के लेखन में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस काल के प्रारम्भ में आधुनिक दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश पाए जाते थे। चीनी को 'सिनी' इसलिए कहा जाता था क्योंकि यह चीन से आयातित होता था। महाभारत में इस बात का उल्लेख है कि युधिष्ठिर को उपहारस्वरूप चीन से रेशम प्राप्त हुआ था। महाभारत का काल ई.पू. दूसरी सहस्राब्दी माना जाता है। इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं कि इस काल में भारत और चीन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे। चीनी ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख पाया जाता है कि चीनी लोगों ने मलक्का और उससे भी आगे के स्थानों की यात्राएँ कीं। इससे इस बात के सबूत मिलते हैं कि चीन और

दक्षिण भारत के बीच व्यापारिक सम्बन्ध मौजूद थे। चीन से रेशम और चीनी भारत मँगवाया जाता था। चीन में चीनी को 'सिनी' तथा रेशम को 'सिनान' कहा जाता था। 'सिनान' का अर्थ होता है मोड़कर रखा जाने वाला कपड़ा। इसके बदले चीन को इत्र, मूँगा तथा गोलमिर्च भारत से निर्यात किया जाता था। हाल में इस बात का भी पता चला है कि दक्षिण भारतीय लोग चीन तथा पश्चिम एशिया के बीच व्यापार में बिचौलिए का काम करते थे। चीन तथा पश्चिम एशिया के बीच व्यापार तमिल बंदरगाहों से होता था। लम्बे समय (ई.पू. 500) तक मालाबार और कोरोमण्डल के तटवर्ती इलाकों का चीन के साथ व्यापार फलता फूलता रहा। चीन से काजू दक्षिण भारतीय जहाजों द्वारा पश्चिम एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका भेजा जाता रहा। पहली शताब्दी में भी दक्षिण भारत का व्यापार चीन और जापान से आगे बढ़कर जावा-सुमात्रा तक होने के प्रमाण मिलते हैं। चीनी शासकों *होटी* (सन् 85-105) तथा *हिवांटी* (सन् 158-159) के शासनकाल में दक्षिण भारत के अनेक व्यापारिक संस्थानों द्वारा चीन को भेंट के तौर पर सामान भेजने का उल्लेख चीनी स्रोतों में पाया जाता है। चीन और दक्षिण भारत के बीच समुद्री व्यापार छठी शताब्दी तक जारी रहा। शुरुआती दौर में उत्तर भारत से चीन जाने वाले धार्मिक समूहों ने भी चीन एवं दक्षिण भारत के बीच व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाने में मदद की।

5.3 अनुवादकों के सामने चुनौतियाँ

सभ्यता के शुरुआती दौर में बौद्ध धर्मग्रन्थों के अनुवाद का कार्य कठिनाइयों से भरा था। चीनी शासक आखिरकार बौद्ध धर्म को क्यों पसन्द करते? चीन का तो अपना अच्छा-भला धर्म था! तो क्या चीन में प्रचलित धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म श्रेष्ठ था? इन प्रश्नों का जवाब आसान नहीं है। गौरतलब है कि प्रारम्भिक दौर में चीन में बौद्ध धर्म को किसी मजहब के रूप में नहीं, एक दर्शन के रूप में स्वीकृति मिली। चीनी शासकों ने बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत से बौद्ध भिक्षुओं को अपना दूत भेज कर आमन्त्रित किया। उस जमाने में बौद्ध धर्म को एक उत्कृष्ट शैक्षणिक दर्शन के रूप में जाना जाता था।

आगे बौद्ध नामों के साथ अनेक चीनी नामों की चर्चा होगी। वैसे किसी गैर चीनी व्यक्ति के लिए चीनी नामों का सही उच्चारण अथवा सही-सही उसे हिन्दी-अंग्रेजी में लिख पाना कठिन है, इसलिए सम्भव है कि ये चीनी नाम शुद्ध शुद्ध नहीं लिखे गए हों। किन्तु बौद्ध नामों के मामले में ऐसी कोई परेशानी सामने नहीं आती।

चीन में पहले पहल आने वाले बौद्ध भिक्षुओं को मोटन (Moton) तथा चुफारलन (Chufarlan) के नाम से जाना जाता था। इनका स्वागत होंग लू सी ने किया था, जो आज के विदेश मन्त्रालय अथवा प्रान्तीय विभाग के समकक्ष है।

इतिहास में इस बात की चर्चा है कि चीन के विभिन्न शासकों ने अनुवादकों को भारत भेजा जहाँ उन्होंने संस्कृत और पालि भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। इसके बाद उन्होंने भारत में लम्बे समय तक रहकर बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और इसके बाद चीन वापस गए। सन् 65-67 में चीन में बौद्ध धर्म के प्रवेश के बाद सबसे बड़ी चुनौती थी बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद। ई.पू. दूसरी सदी से लेकर चौथी सदी के बीच इस चुनौतीपूर्ण कार्य को भारत, मध्य-एशिया, पार्थिया, इण्डो-सीथिया (जो कि शकों की ही एक शाखा माने जाते हैं और जिनके बारे में माना जाता है कि वे दक्षिण साइबेरिया से होते हुए बैक्ट्रिया, सोग्दियाना, अरकोशिया, गान्धार, कश्मीर, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान पहुँचे) से आए अनुवादकों ने स्वीकार किया।

बौद्ध धर्म के चीन में स्थापित होने के सदियों बाद तक यह दुरूह कार्य जारी रहा। बौद्ध धर्म के विचार परम्परागत चीनी विचारों से बिल्कुल भिन्न थे। इसके अलावा संस्कृत भाषा भी चीनी भाषा से बिल्कुल भिन्न थी। संस्कृत भाषा का एक सुविकसित व्याकरण था, जबकि चीनी भाषा में व्याकरण का व्यवस्थित स्वरूप विकसित ही नहीं हुआ था। बिल्कुल शुरुआती दौर में अनुवादकों को भारतीय नामों को चीनी भाषा में शुद्ध-शुद्ध लिखे जाने के लिए उनका ध्वन्यात्मक रूपान्तरण करना होता था, ताकि बौद्ध धर्म की गूढ़ वैचारिक अभिव्यक्तियों को चीनी लिपि में लिखा जा सके। यह भी याद रखना चाहिए कि चीनी लिपि चित्रलिपि है, और इसके अर्थ की प्रकृति संकेतात्मक (ideographic) है। इसके विपरीत संस्कृत लिपि वर्णमाला आधारित है, बहुमात्रिक है, और कई सहज व्याकरणिक

नियमों, विकारों से निर्देशित है। आर्थर एफ. राइट का कहना है कि 'चीन में व्यक्तित्वों को उनके अवयवों में तोड़कर व्याख्यायित करने की परम्परा नहीं रही है, जबकि भारत में मनोवैज्ञानिक व्याख्या का विज्ञान पर्याप्त विकसित था।' देश और काल की अवधारणाओं में भी इन दोनों के बीच बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। चीन में देश और काल को सीमित, परिमित रूप में देखा जाता था और काल को व्यक्तियों के जीवन या राजनीतिक कालखण्डों के रूप में देखा जाता था। दूसरी ओर भारत में देश एवं काल को अनन्त माना जाता था और इन्हें ब्रह्माण्डीय पैमाने पर आँका जाता था न कि सामान्य जीवन के पैमाने पर। इन दो प्राचीन सभ्यताओं की सामाजिक तथा राजनीतिक मान्यताओं में भी बड़ा अन्तर दिखाई देता है। कन्फ्यूशियस के अनुसार समाज एक प्रकार का दैवी-प्रावधान है जो पाँच प्रकार के सम्बन्धों पर आधारित है। ये पाँच सम्बन्ध हैं–

1. *राजा एवं प्रजा के बीच सम्बन्ध,*
2. *पिता एवं पुत्र के बीच सम्बन्ध,*
3. *पति एवं पत्नी के बीच सम्बन्ध,*
4. *बड़े और छोटे भाइयों के बीच सम्बन्ध तथा*
5. *मित्रों के बीच सम्बन्ध।*

कन्फ्यूशियस द्वारा प्रतिपादित दया के सिद्धान्त के अनुसार धर्म का अर्थ होता है स्वर्ग की पूजा। जनता के लिए स्वर्ग की पूजा के अलावा धर्म की दृष्टि से और कुछ भी आवश्यक नहीं। दूसरी ओर बौद्ध धर्म परिव्राजक भिक्षुक के आदर्श में विश्वास करता है जो जन्म और रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु जैसे कष्टों का निवारण चाहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दोनों धर्मों की वैचारिक पृष्ठभूमियाँ बिल्कुल अलग-अलग थीं। इसके कारण बौद्ध धर्म की दुरूह तकनीकी शब्दावली का चीनी भाषा में अनुवाद एक बड़ी चुनौती थी। संस्कृत तथा पालि के नामों को ध्वन्यात्मक रूपान्तरण के द्वारा चीनी भाषा की चित्रात्मक लिपि में लिखना एक कठिन कार्य था। अक्षर आधारित लिपि में नामों का रूपान्तरण इतना मुश्किल कार्य नहीं है। चीन के दक्षिणी प्रान्तों में कार्यरत लो-यांग एवं चांग-एन के धार्मिक संस्थानों के अलावा चीन में संस्कृत की जानकारी रखनेवाले लोगों की नितान्त कमी थी। इसी प्रकार मध्य एशियाई तथा भारतीय भिक्षुओं को भी साहित्यिक चीनी की जानकारी नहीं थी।

इस काल में चीन में अनेक देशों के बौद्ध भिक्षुओं के साथ हीनयान-महायान जैसे बौद्ध धर्म के विभिन्न स्वरूपों और वैचारिक घरानों का आगमन हुआ। इस दौर में बौद्ध शब्दावली का चीनी भाषा में अनुवाद अस्पष्ट तथा दुविधाजनक (confusing) था। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि इस दौरान चीनी बौद्ध अनुवादक अन्धेरे में तीर चला रहे थे। कालक्रम में चीनी बौद्ध मत का ठोस स्वरूप विकसित हुआ। ई.पू. अन्तिम सदी में चीनी लिपि को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया–उत्तरी, दक्षिणी-पूर्वी तथा दक्षिणी। उच्चारण में विभिन्नता मुख्यतः इन लिपि-चिह्नों के विभिन्न स्वरूपों द्वारा अभिव्यक्त की जाती थी, हालाँकि लिपि में कोई बदलाव नहीं किया जाता था।

ब्राह्मी लिपि तकरीबन सभी आधुनिक लिखित भाषाओं की जननी मानी जाती है। इन विभिन्न लिपियों का विकास पाँचवी सदी में हुआ था। आज ब्राह्मी से निकलने वाली लिपियों की संख्या 40 के करीब मानी जाती है, जिनमें तिब्बती, सिंहल, शारदा, नेवारी, बंगला, ओड़िया, गुजराती, गुरुमुखी, लहन्दा, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम, बर्मी, ख्मेर, लाओ, थाई तथा देवनागरी जैसी लिपियाँ शामिल हैं। इसके अलावा जापानी जैसी लिपियाँ भी (स्वरों के क्रम में पाई जानी वाली समानता के आधार पर) एक हद तक भारतीय लिपि से निकली मानी जाती हैं। मौर्य वंश के तीसरे शासक सम्राट अशोक (ई.पू. 270-232) के शिलालेखों में सबसे पहले ब्राह्मी लिपि पाई गई है। हम पाते हैं कि बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद के इतिहास में अनुवादकों ने अनुवाद सम्बन्धी अनेक नियमों और परम्पराओं का अनुपालन किया था।

अनुवादकों ने अ, यी, के, गे, स्, फु, मि-लो, फु-सा जैसे शब्द संकेतों का प्रयोग किया जो प्रायः चीनी भाषा के लिखित स्वरूप में नहीं पाया जाता है। मैत्रेय और बोधिसत्व जैसे शब्दों का अनुवाद मि-लो तथा फु-सा जैसी ध्वनियों के प्रयोग के द्वारा किया गया। संस्कृत शब्द श्रमण का अनुवाद शी-मेन जैसे ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा किया गया। चीनी भाषा में एक ही शब्द को अनेक प्रकार से लिखा जा सकता है, क्योंकि चीनी वर्णमाला समध्वन्यात्मक

(homophonous) है। उदाहरण के लिए शन का अर्थ अच्छा या परोपकारी या लिखना या फिर पहाड़ हो सकता है। शन के विभिन्न अर्थ उसे बोलने के तरीके से ही स्पष्ट होते हैं। उच्चारण के कारण अर्थ में आने वाली विभिन्नता उस समय के अनुवादकों को काफी उलझन में डालती थी। कई बार चीनी अनुवादक संस्कृत के शब्दों का अर्थ ठीक से समझ नहीं पाते थे और वे उन शब्दों का अनुवाद सीधे सीधे ध्वन्यात्मक रूपान्तरण के द्वारा करते थे। इसी प्रकार की गलती भारतीय अनुवादकों के द्वारा भी की जाती थी। उदाहरण के लिए भागवत का अनुवाद पो-जे-पो किया जाता था। चीनी शब्द पो का प्रयोग संस्कृत के व, प, फ, भ तथा वत के बदले किया जाता था।

शुरुआती दौर में खास शब्दों तथा नामों आदि के अनुवाद में एकरूपता नहीं दिखाई देती है। इन शब्दों को परिवर्तन के अनेक दौरों से गुजरना पड़ा। उदाहरण के लिए बुद्ध को चीनी भाषा में फो-टु, फो-टू दोनों नामों से जाना जाता था और बुद्ध के चीनी सम्बोधन में अनेक विकृतियाँ दिखाई देती हैं। बाद में बुद्ध के सम्बोधन के लिए फो का प्रयोग किया जाने लगा जो शायद फो-टू का ही संक्षिप्त स्वरूप है। सर चार्ल्स इलियट का कहना है कि फो-टू का ही पहले वुट-ठा उच्चारण किया जाता था।

प्राचीन ध्वन्यात्मक अनुवाद परम्परा से लेकर आधुनिक काल तक लिप्यन्तरण (transcription) के लिए कुछ खास वर्णों तथा परम्परागत शब्द-संकेतों का प्रयोग किया जाता रहा है। लिप्यन्तरण कोई नई खोज नहीं है और इसका प्रयोग अनुवाद के उद्देश्य से लम्बे समय से किया जाता रहा है। हान वंश के पहले और दूसरे दोनों ही गौरवशाली काल में चीन के पश्चिमी देशों से गहरे राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्ध थे और भारी संख्या में इन देशों से लोग आते जाते थे। इन देशों के नामों के लिप्यन्तरण की जरूरत होती थी। हान वंश के दौरान इस प्रकार के 200 भौगोलिक नामों के लिप्यन्तरण की चर्चा मिलती है। बौद्ध लिप्यन्तरणकारों ने उपलब्ध कामचलाऊ व्यवस्था का उपयोग कर विदेशी ध्वनियों का लिप्यन्तरण किया।

बौद्ध साहित्य में भारतीय शब्दों के लिप्यन्तरण की एक रोचक प्रणाली प्रचलित थी। जिन भारतीय शब्दों का अर्थ स्पष्ट था, उन्हें सीधे-सीधे चीनी भाषा में ले लिया जाता था, जैसे दिवाकर के लिए थिवाकरा। कभी कभी नामों को अर्थ के आधार पर चीनी भाषा में अनूदित कर दिया जाता था। उदाहरण के लिए तथागत का अनुवाद जिह-कु-अंग (सूर्य की किरणें) किया जाता था। इसी प्रकार घोड़े के हिनहिनाने को मा-मिंग (मा—घोड़ा, मिंग—आवाज), देवों के आशीर्वाद को टिएन-शाउ (टिएन—आकाश या देवता), वु-यु (शोक रहित), जु-लाइ (अपने पूर्वजों की भाँति इस दुनिया में आने वाला) इस प्रकार के अनुवाद के कुछ और उदाहरण हैं। भारतीय नामों के इस प्रकार के अनुवाद से उनका वास्तविक अर्थ प्रकट होता है। अमिताभ का लिप्यन्तरण कर इसे अ-मि-ता-पो लिखा जाता था। इसका अनुवाद भी वु-लिआंग-कुआंग (अप्रतिम प्रकाश) किया गया। चीनी भाषा में इस प्रकार के लिप्यन्तरण और अनुवाद के अनेक उदाहरण मिलते हैं, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि उनका अनुवाद कब और किन लोगों ने किया। लेकिन कई ऐसे भी शब्द थे, जिनका इस प्रकार लिप्यन्तरण अथवा अनुवाद करना सम्भव नहीं था जैसे कि निर्वाण और समाधि इत्यादि।

सन् 880 में लिखी गई जापानी पुस्तक *सिद्धकोश* के 34वें अध्याय *सि-तान-चांग* में इस बात का उल्लेख है कि संस्कृत वर्णमाला में कम से कम 49 ऐसे अक्षर हैं जो अपने जैसे चीनी अक्षरों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

भारतीय बौद्ध भिक्षुओं द्वारा एक प्रणाली फान-चिएह या फान-यिन विकसित की गई थी, जिसके द्वारा पालि और संस्कृत शब्द-खण्डों को चीनी भाषा में बदला जाता था। फान-चिएह चीनी शब्दकोशों में हिज्जे की एक प्रणाली थी जो मंचू वंश के राजा कांग-शी (सन् 1662-1723) को बहुत पसन्द थी। यह प्रणाली भारतीय सन्धि-प्रकरण जैसी थी। इस प्रणाली में दो अक्षरों के शब्दखण्डों को जोड़ा जाता था और पहले शब्दखण्ड के अन्तिम अक्षर तथा दूसरे शब्दखण्ड के पहले अक्षर को मिलाकर एक नए शब्द की रचना की जाती थी। उदाहरण के लिए फु-वान (शाम को देर से शुरुआत करना), फान (इज्जत करना, पलटना)।

संस्कृत के प्रकाण्ड और प्रख्यात विद्वान हुआन-चुआंग और आई-चिंग ने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित संस्कृत शब्दों के चीनी भाषा में रूपान्तरण के लिए कुछ नियम स्थापित किए। ऐसा माना जाता है कि उनके प्रयत्नों के कारण ही संस्कृत के शब्दों का चीनी रूपान्तरण एक व्यवस्थित स्वरूप ले सका। हुआन-चुआंग बौद्ध धर्म से सम्बन्धित शब्दों के लिप्यन्तरण को अनुवाद की तुलना में बेहतर मानते थे।

अनुवाद के शुरुआती दौर में बौद्ध धर्म के शब्दों का अनुवाद ताओवादी या दाओवादी शब्दों के आधार पर किया जाता था (दाओवाद आचार-विचार की एक ऐसी प्रणाली है जिसे कई बार दार्शनिक माना जाता है, कई बार धार्मिक माना जाता है तो कई बार इसे इन दोनों के समन्वय के रूप में भी देखा जाता है)। लेकिन जल्द ही ऐसा लगने लगा कि इन अनुवादों में मूल शब्दों में अन्तर्निहित अर्थ प्रकट नहीं हो पाते थे। इसे देखते हुए अनुवादकों ने मूल शब्दों को ही चीनी भाषा में लिप्यन्तरित करना शुरू कर दिया। इसी आधार पर प्रज्ञा, परमित तथा निर्वाण जैसे शब्दों को चीनी भाषा में पन-जो, पा-लो-मि-तो, निः-पान आदि लिखा जाने लगा। चौथी शताब्दी के अन्त में चीनी भिक्षुक ताओ-एन, जो स्वयं एक महान पुस्तकवेत्ता तथा धार्मिक-ग्रन्थों के संकलनकर्ता थे, ने अनुवाद संस्थान से सम्बद्ध अनुवादकों को कुछ व्यावहारिक सुझाव दिए। लिप्यन्तरण करने वाले लोगों की टीम के मुख्य व्यवस्थापक के रूप में उन्हें लिप्यन्तरण की समस्याओं की गहरी समझ थी। उनके सामने समस्या थी कि अनुवाद को क्या लोगों की जरूरतों के अनुरूप ढालकर संक्षिप्त और परिष्कृत रूप में पेश किया जाना चाहिए अथवा अनुवाद को मूल-पाठ के करीब रखा जाना चाहिए, जिसके कारण इसमें दुहराव और क्लिष्टता आने का खतरा रहता था। प्रज्ञा परमिता सूत्र की भूमिका में ताओ-एन ने लिप्यन्तरणकर्ताओं को बताया है कि उन्हें मूल-पाठ से कब हटने की इजाजत है। इसी क्रम में उन्होंने उन तीन बिन्दुओं का उल्लेख किया है जहाँ संस्कृत मूल-पाठ की यथावत अभिव्यक्ति की जानी चाहिए। हुआन-चुआंग ने अनुवादकों के लिए कुछ नियमों की भी स्थापना की। अनुवाद में उन्हें महारत हासिल थी और उन्होंने बौद्ध धर्म के शब्दों के अनुवाद के लिए अत्यन्त सटीक चीनी शब्दों का प्रयोग किया।

विदेशी धर्मप्रचारकों तथा चीनी बौद्ध-भिक्षुकों के प्रयास से काफी मात्रा में बौद्ध-सूत्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया। यही सूत्र बौद्ध-धर्म के मूलाधार माने जाते हैं। इस प्रक्रिया में चीनी भाषा में हजारों नए शब्द शामिल हुए। विदेशी धर्म-प्रचारकों में पार्थिया के एन शिह काओ, टुखारा से आए धर्मारक तथा कच्छ से आए कुमारजीव प्रमुख थे।

इस बात को भी समझना महत्त्वपूर्ण है कि चीनी लोगों को बौद्ध शब्दावली के बारे में कितनी जानकारी थी। भारतीय और चीनी माध्यमिकों में धर्म सम्बन्धी तकनीकी शब्दों की भरमार है। इस प्रकार के तकनीकी शब्दों के चीनी अनुवाद की सफलता के दो सूचक थे—अनुवाद मूल शब्द के औपचारिक स्वरूप से कितने नजदीक हैं और इसे चीनी लोग कितने अच्छे ढंग से समझ पाते हैं। अगर ये दो शर्तें पूरी होती थीं तो माना जाता था कि इस तकनीकी शब्द का ठीक अनुवाद किया गया है।

चौथी सदी में चीनी साहित्यिक परिवेश पर नव-ताओवाद का गहरा प्रभाव था। ठीक इसी समय बौद्ध विचारकों के बीच प्रज्ञा चिन्तनधारा अपना प्रभाव बढ़ा रही थी। इन दोनों धाराओं की दार्शनिक पृष्ठभूमि एक ही प्रकार की थी। बौद्ध दर्शन के अनुसार सभी वस्तुओं का सार शून्य है। ठीक इसी प्रकार नव-ताओवाद की मान्यता थी कि हर पदार्थ के मूल में अन-अस्तित्व (वु-वेइ) है। यह वक्तव्य लिउ-चिन (सन् 438-495) का है।

चीनी भाषा में जिन सैकड़ो सूत्रों का अनुवाद हुआ उनमें धारा-नी (Dhaara-ni) का बहुत बड़ा हिस्सा है। इन सूत्रों को देखने से लगता है कि अनुवाद से ज्यादा ये लिप्यन्तरण के उदाहरण हैं। धारा-नी के अनुवाद में कोई विशेष समस्या नहीं दिखाई देती है। इस लिप्यन्तरण के लिए न तो संस्कृत व्याकरण की गहरी जानकारी आवश्यक थी न ही संस्कृत साहित्य की। धारा-नी के लिप्यन्तरण के लिए केवल भारतीय लिपि की ही जानकारी आवश्यक थी।

बौद्ध-धर्म के प्रसार के पहले ही चीनी समाज ताओवादी जादू-टोने आदि से परिचित था। इस कारण उन्हें बौद्ध-मन्त्रों ने काफी आकर्षित किया। सर्वप्रथम सन् 625 में चांगन में हजारों धारा-नी तथा साधना मन्त्रों के साथ पहुँचने वाला बौद्ध-भिक्षु मध्य-भारत से आया था। इन मन्त्रों का अनुवाद तो-लो नि-चि-चिंग या धारा-नी संग्रह के नाम से किया गया। अब ये अनुवाद तो उपलब्ध हैं लेकिन मूल-मन्त्र नहीं मिलते।

आगे आने वाली शताब्दियों में तन्त्र-मार्ग के अनेक साधक चीन में मन्त्रों का संकलन ले कर पहुँचे। इनमें से शुभकर सिंह, वज्रबोधि तथा अमोघवज्र उल्लेखनीय हैं। ये सभी भारतीय थे। तन्त्रयान के मूल-ग्रन्थ *महावैरोचन* का अनुवाद शुभकर सिंह ने किया।

चीन में बौद्ध-धर्म के लम्बे इतिहास में भिक्षुओं तथा उनके शिष्यों के निःस्वार्थ तथा श्रमसाध्य प्रयास से अनुवाद का कार्य लगातार चलता रहा। जापानी भाषा में प्रकाशित चीनी *त्रिपिटिक* के अन्तिम संस्करण में 85 पुस्तकों तथा

3053 मन्त्रों की चर्चा है। मानव सभ्यता में इतनी बड़ी मात्रा में इस प्रकार के सटीक अनुवाद के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। इसकी तुलना आधुनिक काल से भी नहीं की जा सकती है। भारतवर्ष के दार्शनिक विचार और चिन्तन, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था ने चीनी जनमानस तथा संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया। बौद्ध-धर्म के आधुनिक वैज्ञानिक काल में भी इस बात पर आश्चर्य का अनुभव किया जाता है कि किस प्रकार इस विशाल ज्ञान-भण्डार का चीनी भाषा में अनुवाद केवल मानवीय श्रम के आधार पर किया गया।

ओम मनि पद्मे हुम बौद्ध धर्म का सबसे जाना-माना मन्त्र है। छह पदों वाला यह मन्त्र अवलोकितेश्वर बोधिसत्व (चीनी–गुवान्यिन) का विशेष मन्त्र है। दलाई लामा को अवलोकितेश्वर का अवतार माना जाता है और इसीलिए उनके अनुयायी इस मन्त्र को विशेष महत्त्व देते हैं।

कुछ यूरोपीय इतिहासकारों का मानना है कि मौर्य शासक अशोक ने शाही भिक्षुक मासिम स्थावीरा को ई.पू. 265 में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए नेपाल, चीन, भूटान तथा चीन भेजा था। लेकिन इस बात की पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं हो पाई है कि क्या सचमुच बौद्ध धर्म की स्थापना के लिए भिक्षुक स्थावीरा इन देशों में गए थे।

हाल के कुछ शोध से पता चला है कि प्रथम शासक किन शिहुआंग (ई.पू. 259-210) के समय ही चीन में बौद्ध धर्म स्थापित हो चुका था। यहाँ चीनी इतिहास के इस प्रथम शासक के बारे में थोड़ी चर्चा करना उचित होगा। शिहुआंग के शासनकाल में ही बौद्ध धर्म के अनुवादकों को पहली बार एक चुनौती का सामना करना पड़ा। चीन के प्रथम शासक के रूप में शिहुआंग ने चीनी इतिहास और संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। चीन की महान दीवार और मिट्टी के योद्धा तथा घोड़े इसी शासक के नाम के साथ जुड़े हैं जो आज भी लोगों को आश्चर्यचकित करते हैं। शिहुआंग एक निर्दयी और निरंकुश शासक था। अपने विरोधियों की हत्या करने अथवा उन्हें प्रताड़ित करने में उसे जरा भी देर नहीं लगती थी। ऐसा माना जाता है कि उसने अपने पहले लिखी गई सारी किताबें जला डालीं। पुरानी बातों पर चर्चा या वाद-विवाद को भी उसने प्रतिबन्धित कर दिया। अन्य दार्शनिक धाराओं की तरह उसने बौद्ध धर्म तथा इससे सम्बन्धित पूजा-स्थलों को भी दबाने की कोशिश की। शांक्सी प्रान्तीय पुरातत्त्व संस्थान के शोधकर्ता हान वेइ ने महान इतिहासज्ञ (Grand Historian) के अभिलेखों तथा अन्य ऐतिहासिक, भाषावैज्ञानिक तथा पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर इस बात की पुष्टि की है। इस अध्ययन से यह बात सामने आती है कि ई.पू. 213 में दमन की इस प्रक्रिया की शुरुआत के पहले ही चीन के भीतरी हिस्सों में बौद्ध-धर्म लोकप्रिय हो चुका था। 'सिल्क रूट' के पुरातत्त्ववेत्ता वांग जिआनजिन का भी मानना है कि हान का शोध विश्वसनीय है।

5.4 गैर-चीनी अनुवादक

सन् 148 में पार्थिया का राजकुमार–भिक्षुक एन शिगाओ चीन पहुँचे। इन्हीं के साथ बौद्ध-ग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद की शुरुआत मानी जाती है। चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश ई.पू. तीसरी सदी में चीन के प्रथम सम्राट किन शिहुआंग के शासन के दौरान शुरू हुआ। बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अनुवाद का प्रथम दस्तावेजी प्रमाण दूसरी सदी में मिलता है। शायद चीन के इलाके में कुशान वंश का प्रसार इसका कारण रहा हो। कुशानों के शासन के दौरान, उत्तर पश्चिमी भारत तथा इसके आसपास के इलाकों से चीन के साथ सड़क मार्ग (चीन को जाने वाली सिल्क रोड से होकर) और समुद्री मार्ग दोनों से ही व्यापार होता था। कुशान शब्द की व्युत्पत्ति भी चीनी शब्द गुइशांग से मानी जाती है, जिसका उल्लेख ऐतिहासिक दस्तावेजों में पाया जाता है। तृतीय कुशान सम्राट कनिष्क का शासन पहली सदी के अन्त से लेकर दूसरी सदी के प्रारम्भ या मध्य तक फल-फूल रहा था। कनिष्क के साम्राज्य की दो राजधानियाँ थीं–खैबर दर्रे के पास पुरुषपुर (जो अब पेशावर कहलाता है) तथा उत्तरी भारत का मथुरा। कनिष्क का शासन काल कुशान वंश के उत्कर्ष का काल था। कनिष्क के शासन के दौरान कुशान साम्राज्य अराल की खाड़ी से लेकर आधुनिक काल के उज्बेकिस्तान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान तक फैला हुआ था। उत्तर भारत में यह साम्राज्य पूरब में बनारस तक तो दक्षिण में साँची तक फैला हुआ था। यह महान समृद्धि का काल था। व्यापार और व्यवसाय खूब फल-फूल रहे थे और शहरी जीवन, बौद्ध विचार तथा चाक्षुष कलाएँ अपने उभार पर थीं।

कनिष्क ने चीन के दक्षिणी राज्य लोयांग में बौद्ध मन्दिर की स्थापना की। उन्होंने बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद भी करवाया। इसके साथ ही मध्य एशियाई धर्म-परिवर्तन के जिस दौर की शुरुआत हुई वह कई

सदियों तक चलती रही। एन शिगाओ ने बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों, ध्यान तथा अभिधारणा से सम्बन्धित कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। एन शिगाओ के साथ ही काम करने वाले पार्थिया के सामान्य नागरिक एन जुआन ने बोधिसत्व मार्ग के बारे में प्रारम्भिक बौद्ध महायान ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

चीन में महायान बौद्धधर्म का व्यापक प्रसार कुशान बौद्धभिक्षु लोककसेमा द्वारा किया गया जो सन् 164-186 के बीच सक्रिय थे। ये प्राचीन कुशान साम्राज्य गान्धार से आए थे। लोककसेमा ने *अष्टसहस्रिका प्रज्ञापरमिता सूत्र, समाधि* तथा *बुद्ध अक्शोभ्य* पर टीका जैसे महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक महायान सूत्रों का अनुवाद किया। लोककसेमा के इन अनुवादों से महायान बौद्धधर्म के बारे में गहरी अन्तर्दृष्टि मिलती है।

शुरुआत में चीन में पैर जमाने में बौद्ध-धर्म को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मठवाद की अवधारणा तथा सामाजिक मामलों से दूर रहने के सिद्धान्त चीनी समाज में लम्बे समय से स्थापित मान्यताओं और परम्पराओं के खिलाफ जाते थे।

इस अवधि में, महान भारतीय बौद्ध-भिक्षु सिल्क-रोड से होकर बौद्ध-धर्म की शिक्षा देने के लिए चीन जाते रहे और अनुवाद का कार्य मुख्य रूप से चीनी भिक्षुओं द्वारा नहीं बल्कि विदेशी भिक्षुओं द्वारा ही किया जाता रहा। दूसरी सदी के मध्य में कनिष्क के नेतृत्व में कुशान साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया तक हो गया। यह साम्राज्य आधुनिक जिनजिआंग के तारिम बेसिन में काशगर, खोटन तथा यारकन्द तक फैला हुआ था। परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान काफी बढ़ गया। इसके तुरन्त बाद मध्य एशिया के बौद्ध धर्म-प्रचारक चीन के बड़े शहरों लोयांग तथा यदा-कदा नानजिंग में काफी सक्रिय हो गए, जहाँ उन्होंने अपने अनुवाद के कार्य से खूब नाम कमाया। उन्होंने हीनयान तथा महायान दोनों सम्प्रदायों को आगे बढ़ाने की कोशिश की। हीनयान संस्कृत तथा पालि भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है—अनुपयुक्त साधन या परित्यक्त साधन या खराब-यान। यह शब्द पहली तथा दूसरी सदी के दौरान सबसे पहले देखने को मिलता है।

हीनयान की तुलना महायान से की जाती है, जिसका अर्थ है महान-यान। हीनयान का असली अर्थ क्या है, इसके बारे में कई प्रकार की अवधारणाएँ हैं। इसका क्या अर्थ है, और यह किसे इंगित करता है, इसके बारे में मतभेद है। जो बोधिसत्व की पूजा करते हैं, तथा महायान-सूत्र का पाठ करते हैं, वे महायानी कहलाते हैं। ऐसा नहीं करने वाले हीनयानी कहलाते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है पार्थिया के राजकुमार एन शिह काओ ने सबसे पहले सन् 148-170 के बीच हीनयान बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। अनुवाद कार्य में शामिल अन्य उल्लेखनीय लोगों के नाम इस प्रकार हैं :

लोकक्षेम-कुशान : जिसने सबसे पहले सन् 167-186 के बीच महायान ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

एन हुआन : पार्थिया का व्यापारी, जो चीन में सन् 181 में भिक्षु बन गया।

झी याओ : (सन् 185), कुशान भिक्षुक, लोकक्षेम के बाद की दूसरी पीढ़ी का अनुवादक।

कांग मेंग हिआंग : (सन् 194-207), कांगजू से चीनी के पहले अनुवादक, मध्य एशिया की एक प्राचीन सभ्यता की संज्ञा। यह घुमन्तू समुदाय के लोगों का एक समूह था, जिनके जनजातीय तथा नस्ली मूल के बारे में अब कोई जानकारी नहीं है।

झि किआन : (सन् 220-252), कुशान भिक्षुक, जिसके दादा सन् 168-190 के बीच चीन में ही बस गए।

झि युएह : (सन् 230), नानजिंग में काम करने वाला कुशान संन्यासी।

कांग सेंहुई : (सन् 247-280), चीनी साम्राज्य के सुदूर दक्षिणी क्षेत्र चिआओ चिह में जन्म। सोग्डियन व्यापारी का बेटा।

टान टी : (सन् 254), पार्थिया का भिक्षुक।

पो येन : (सन् 259), कुचिया का राजकुमार।

धर्मरक्ष : (265-313), कुशान, जिसका परिवार कई पीढ़ियों से दुनहुआंग (गनसू प्रान्त, चीन) में रहता आया था।

अन फाचीन : (सन् 281-306), पार्थिया-मूल का भिक्षुक।

पो स्रीमित्र : (सन् 317-322), कुचिया का एक राजकुमार।

फो तु तेंग : (चौथी सदी), मध्य एशिया का भिक्षुक, जो चीन की अदालत में सलाहकार बना।

बोधिधर्म : (सन् 440-528), यांग जुआनजी के मुताबिक यह मध्य एशिया मूल का एक भिक्षुक था, जिससे उनकी मुलाकात दक्षिणी चीन के लोयांग प्रान्त में हुई थी। बोधिधर्म बौद्ध-धर्म के चान (ज़ेन) मत का प्रवर्तक था।

सन् 485 के आसपास गान्धार से पाँच भिक्षुक फुसांग (पुराने जमाने के चीन का एक गाँव) आए थे, यह दक्षिणी चीन का एक स्थान है। यहाँ उन्होंने बौद्ध-धर्म की स्थापना की। पहले के जमाने में फुसांग के लोग बौद्ध-धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे, लेकिन सोंग वंश (सन् 485) के दामिंग के दूसरे वर्ष में काबुल क्षेत्र के गान्धार से पानी के जहाज से आए पाँच भिक्षुओं ने बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया, इसके धर्म-ग्रन्थों और चित्रों का प्रचार-प्रसार किया तथा लोगों से सांसारिक बन्धनों को छोड़ने का उपदेश दिया।

ज्ञान गुप्त (सन् 561-592) : बौद्ध-भिक्षु। गान्धार प्रदेश का अनुवादक।

शिक्षानन्द (सन् 652-710) : बौद्ध-भिक्षु। उद्यान, गान्धार का अनुवादक।

प्रज्ञ (सन् 810) : काबुल का बौद्ध-भिक्षु तथा अनुवादक, जिसने जापानी कुकई को संस्कृत की शिक्षा दी।

संघपाल (सन् 250) उज्बेकिस्तान के दूसरे सबसे बड़े शहर सोघदियाना (समरकन्द) के प्रधानमन्त्री के सबसे बड़े पुत्र थे। दोंग-वु वंश के शासन के दौरान संघपाल चीन में आकर बस गए। उनके द्वारा अनूदित धर्मग्रन्थों में *शतपरमित संग्रह सूत्र* शामिल है। इस सूत्र का अर्थ होता है छह पूर्णताओं से सम्बन्धित आचरणों का संग्रह। इसकी पुस्तिकाओं का अनुवाद सन् 251-280 के बीच किया गया।

धर्मरक्ष (सन् 200-300) भारत से चीन आए थे। आठ वर्ष की अवस्था में उन्हें दीक्षा दी गई। वे पढ़ने और लिखने में अत्यन्त प्रतिभाशाली थे, वे छत्तीस भाषाओं के ज्ञाता थे। अपने बारह सहयोगी अनुवादकों के साथ यात्रा के दौरान वे तुन-हुआंग बोधिसत्व के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने 354 पुस्तिकाओं में 175 धर्मग्रन्थों का अनुवाद किया।

गौतम संघदेव (सन् 300) काबुल के थे। सन् 383-398 के बीच उन्होंने सात धर्मग्रन्थों का अनुवाद किया।

बुद्धभद्र (सन् 394-468) को गुरु हुइ-येन ने सूत्रों के अनुवाद हेतु मध्य भारत से लु-पर्वत पर रहने को बुलाया था। यह पर्वत जिआंगजी प्रान्त के दक्षिण में जिउजिआंग शहर के पास है। उन्होंने तेरह धर्मग्रन्थों के 125 पुस्तिकाओं का अनुवाद किया।

धर्मनन्दी ने *मध्यम आगम* के साथ ही मझोले लम्बाई के सूत्रों की उनसठ पुस्तिकाओं में अनुवाद किया।

बुद्धयाशस का जन्म कश्मीर में हुआ था। वे प्रसिद्ध भारतीय बौद्ध भिक्षु थे। बौद्धधर्म के विषय में वे कुमारजीव के शिक्षक और सलाहकार थे। चांग-अन पहुँचने पर सम्राट याओ हिंग द्वारा इनका स्वागत किया गया। सन् 408 में वे चांग-अन पहुँचे। उन्होंने *धर्म गुप्तक विनय* अर्थात चार श्रेणियों के विनय का अनुवाद सन् 410-412 के बीच साठ पुस्तिकाओं में किया। सन् 412 में वे कश्मीर वापस आ गए। कहा जाता है कि अपने द्वारा अनूदित सामग्री वहीं से उन्होंने चीन भेजी।

धर्मक्षेम (385-433) आपसी कलह की अवधि के दौरान बेइ-लियांग वंश के शासन में मध्य भारत से चीन पहुँचे थे। वे शास्त्रार्थ में निपुण थे। उन्होंने उन्नीस धर्म ग्रन्थों का 131 पुस्तिकाओं में अनुवाद किया। इसमें *महापरिनिर्वाण सूत्र* भी शामिल है। उन्होंने सन् 414-421 के बीच 40 पुस्तिकाओं का अनुवाद किया।

गुणभद्र (सन् 394-468) का जन्म मध्य भारत में हुआ था। चीन कलह के काल में वे सीलोन से चीन पहुँचे। उन्होंने बावन धर्मग्रन्थों का 134 पुस्तिकाओं में अनुवाद किया।

बुद्धजीव (सन् 423) को विनय अनुवाद में विशेषज्ञता हासिल थी। उन्होंने *महिशासक विनय* का भी अनुवाद किया।

परमार्थ (सन् 499-569) कलह काल के दौरान पश्चिमी भारत से दक्षिणी चीन पहुँचे थे। उन्हें कुमारजीव की श्रेणी का महान अनुवादक माना जाता था। लेकिन उन्हें अपने काम के लिए उतनी सुविधाएँ नहीं मिलीं। उन्होंने पचास धर्मग्रन्थों का 120 पुस्तिकाओं में अनुवाद किया।

बोधिरुचि (पाँचवीं सदी) उत्तर भारत से चीन आए। वे वहाँ अनुवाद केन्द्र के अध्यक्ष रहे। सात सौ बौद्ध भिक्षुओं ने वहाँ तीस वर्षों में तीस धर्मग्रन्थों की 101 पुस्तिकाओं का अनुवाद किया।

प्रज्ञारुचि ब्रह्म मध्य भारत से चीन आए। उन्होंने अठारह धर्मग्रन्थों का 92 पुस्तिकाओं में अनुवाद किया।

5.5 कुमारजीव (सन् 344-413)

भारतीय बौद्ध-भिक्षु तथा संसार के महान अनुवादकों में से एक। कुमारजीव ने पहली बार महत्त्वपूर्ण बौद्धधर्मग्रन्थों का सही ढंग से चीनी भाषा में अनुवाद किया। उनसे पहले किया गया इन धर्मग्रन्थों का अनुवाद बहुत ही सतही (Crude) और कई बार समझ से परे होता था। यहाँ कुमारजीव के जीवन के बारे में थोड़ी सी चर्चा प्रासंगिक होगी।

कुमारजीव का जन्म मध्य एशिया के शहर कुचा (Kucha) में हुआ था। यह स्थान कभी कश्मीर के नजदीक हुआ करता था और आज चीन के जिनजिआंग के अक्सू क्षेत्र में स्थित है। उनके पिता भारतीय ब्राह्मण थे, माता कुचियन राजकुमारी थी। जब वे सात वर्ष के थे तभी उनकी माता बौद्ध-भिक्षुणी बन गईं। उन्होंने अगले कई वर्ष अपनी माता के साथ घूमते हुए कुच, कश्मीर तथा काशगर में बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को सीखते हुए बिताए। उन्हें बीस वर्ष की आयु में कुच के राजकीय महल में दीक्षा दी गई। काशगर (काटाकोरम राजपथ पाकिस्तान के इस्लामाबाद को खुंजराब दर्रे के उस पार काशगर से जोड़ता है) में उनका हीनयान से महायान में धर्मपरिवर्त्तन किया गया। वे अत्यन्त प्रतिभाशाली बौद्ध-भिक्षु के रूप में प्रख्यात हुए, जिन्हें उत्तर भारत में उन दिनों प्रचलित बौद्ध-धर्म के विभिन्न मतों की गहरी जानकारी थी।

सन् 379 में बौद्धधर्म ग्रन्थों के महान विद्वान के रूप में उनकी ख्याति चीन तक फैल गई और उन्हें चीन ले जाने की कोशिश की जाने लगी। चीन के शासक फू चिएन उन्हें अपने दरबार में लाने के लिए इतने व्यग्र थे कि कुछ सूत्रों के अनुसार, उन्होंने कुच को जीतने के लिए सन् 384 में अपनी फौज के सेनापति लू कुआंग को भेजा।

कुमारजीव सन् 402 की शुरुआत में ही चोगान पहुँच पाए। सम्राट द्वारा किए गए भव्य राजकीय स्वागत के बाद कुमारजीव ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। उन्हें रहने के लिए राजकीय आवास दिया गया। उन्होंने दर्जनों बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों और रचनाओं का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इनमें से कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बौद्धग्रन्थ भी शामिल थे।

5.5.1 कुमारजीव : अनुवादक तथा शिक्षक

कुमारजीव ने सामूहिक रूप से अनुवाद-कार्य किया। सैकड़ों बौद्ध-भिक्षुओं के सामने बैठकर उन्होंने चीनी विशेषज्ञों की एक टीम का नेतृत्व किया। उनके कार्य में सहायता के लिए 800 बौद्ध-संन्यासी इकट्ठे हुए थे। इन ग्रन्थों के अनुवाद के दौरान कुमारजीव इनके बारे में उठाए जा रहे प्रश्नों का जवाब भी दे रहे थे। शायद अनजाने में, उनके द्वारा दिए गए कई उत्तर भी चीनी अनुवाद में शामिल कर लिए गए। इस अनुवाद में कई प्रकार की कमियाँ अवश्य हैं, पर कुल मिलाकर कुमारजीव तथा उनके सहयोगियों ने दुरूह धार्मिक रचनाओं का विश्वसनीय अनुवाद तैयार किया। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मूल भाषा और अनूदित भाषा के बीच हर प्रकार की विभिन्नता पाई जाती है, जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं।

इस सफलता का एक कारण शायद कुमारजीव की उदार-दृष्टि थी। उनके दार्शनिक विचार में सम्पूर्ण *महायान* पन्थ शामिल था। *महायान* का संस्कृत अर्थ है उच्चतर यान। बौद्धधर्म का *महायान* पन्थ तथा *थेरवाद* (पूर्वजों का सिद्धान्त)

बौद्ध आस्था की दो प्रमुख शाखाएँ हैं। *थेरवाद* बौद्धमत का धार्मिक स्रोत त्रिपाली धर्मशास्त्र *त्रिपिटक* है। माना जाता है कि *त्रिपिटक* में बुद्ध की शिक्षाओं का प्राचीनतम स्वरूप अब भी सुरक्षित है। सदियों से *थेरवाद* दक्षिण-पूर्व एशिया महादेश (थाईलैण्ड, म्याँमार, कम्बोडिया, लाओंस तथा श्रीलंका) का सर्वप्रमुख धर्म रहा है। *महायान* का उदय भारत में हुआ और यह चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, मध्य एशिया, वियतनाम तथा ताईवान तक पहुँचा। *महायान* के अनुयायियों का परम्परागत रूप से मानना है कि भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण-विकसित स्वरूप (full revelation) इसी मत में दिखाई देता है। वे हीनयान को निम्न श्रेणी का साधन मानते हैं और विश्वास करते हैं कि बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण रूप इसमें दिखाई देता। कुमारजीव किसी भी मत को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करना नहीं चाहते थे। उनकी अपनी कृतियाँ दुर्लभ हैं। उनके विचारों को समझने की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है *विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र* पर उनकी टीका। सन् 405 के बाद हुइ-युआन को लिखे गए उनके पत्र भी अत्यन्त रोचक हैं।

सम्राट याओ हिंग (Yao Hsing) ने कुमारजीव को ब्रह्मचर्य का व्रत तोड़कर दस नर्तकियों के हरम में रहने के लिए बाध्य किया क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि इतने प्रतिभाशाली व्यक्ति की कोई सन्तान न हो। उनके रहने के लिए बौद्ध-मठ के बाहर विलासितापूर्ण व्यवस्था की गई थी। ऐसा लगता है कि कुमारजीव को बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को तोड़ने का कष्ट था और अपने उपदेशों में वे श्रोताओं को कहते थे कि वे उनके उपदेशों से कमल ग्रहण करें और इस बात की ओर ध्यान न दें कि यह कमल किस प्रकार के दुर्गंधपूर्ण परिवेश में खिला था।

वह मध्य एशिया के उन चार महान बौद्ध-संन्यासियों में शामिल थे, जिन्होंने चीन जाकर चीनी बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य किया। वे मठ की संन्यास परम्परा में सात वर्ष की आयु में शामिल हुए। उन्हें *सर्वास्तिवादीन* तथा *महायान* दोनों प्रकार के अध्ययन में पाण्डित्य प्राप्त था। अनुवाद का कार्य प्रारम्भ करने के पहले कुमारजीव को चीनी भाषा में दक्षता हासिल करने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय बौद्ध दर्शन तथा चीनी भाषा दोनों में ही निष्णात होने के कारण उनके द्वारा किया गया अनुवाद आज भी मानक रूप में स्वीकृत किया जाता है। उदाहरण के लिए *कमल-सूत्र* का उनके द्वारा किया गया अनुवाद आज भी मानक समझा जाता है। उनके अनुवादों ने शून्यता के सिद्धान्त जैसे बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के बारे में व्याप्त भ्रान्ति को भी दूर करने में मदद की।

माना जाता है कि उन्होंने सौ से भी अधिक अनुवाद किए। इनमें से केवल चौबीस को ही विश्वसनीय ढंग से उनका अनुवाद माना जा सकता है, लेकिन इसमें चीनी बौद्धधर्म की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें शामिल हैं। कुमारजीव के लेखन-अनुवाद कार्य का चीन की बौद्ध विचार-मीमांसा पर युगान्तरकारी प्रभाव पड़ा। इसके पीछे केवल उनके द्वारा पहले से अनुपलब्ध ग्रन्थों को उपलब्ध कराया जाना ही शामिल नहीं था, बल्कि बौद्ध-दर्शन के विभिन्न सूत्रों और दार्शनिक अवधारणाओं की व्यवस्था भी शामिल थी। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ मिलकर माध्यमिका की चीनी शाखा की नींव रखी जो 'सान-लुन' या 'त्रिसिद्धान्तवाद' के नाम से विख्यात हुआ।

उन्हें पश्चिमी क्षेत्र से आने वाले महान शिक्षक का दर्जा प्राप्त हुआ तथा चीनी बौद्ध विचारकों के बीच उनका काफी सम्मान था। उनके पास अनेक युवा तथा वृद्ध बौद्ध चीनी व्यक्ति आकर उनकी शिक्षाओं तथा अनुवाद सम्बन्धी कार्य से लाभ उठाते थे।

कुमारजीव द्वारा अनूदित महत्त्वपूर्ण बौद्धग्रन्थ इस प्रकार हैं—*हीरक सूत्र, अभिताभ सूत्र, कमल सूत्र (Lotus sutra), विमलकीर्ति निर्देश सूत्र, मूलमाध्यमककारिका, अष्टसहस्रिका प्रज्ञा परमिता, महाप्रज्ञापरमिता उपदेश* (जिसके बारे में कहा जाता है कि यह *पंचविंशतिसहस्रिका-प्रज्ञापरमित सूत्र* नागार्जुन द्वारा लिखित था)। उनके अनुवाद की शैली विशिष्ट थी, जिसमें एक सहज प्रवाह दिखाई देता था। वे अर्थ को स्पष्ट करने को अधिक महत्त्व देते थे, न कि शाब्दिक अनुवाद को। इसी कारण *महायान पन्थ* के मौलिक ग्रन्थों के अनुवाद अधिक प्रचलित और लोकप्रिय रहे हैं।

कुमारजीव के चार शिष्य थे—दाओशेंग, शेंगझाओ, दाओरोंग, तथा शेंगरुई।

कुमारजीव को बहुत सम्मान प्राप्त था। सूत्रों के अनुवाद में मदद करने के लिए सम्राट याओ सिंग (Yao Hsing) ने उन्हें तथा उनके सहयोगियों के वास्ते बड़े-बड़े भवनों की व्यवस्था की थी। कभी-कभी स्वयं सम्राट भी अनुवाद कार्य में शामिल होते थे।

अपनी मृत्यु के पहले कुमारजीव ने घोषणा की थी कि यदि उनका अनुवाद सचमुच बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप है तो मृत्यु के बाद उनकी जिह्वा नहीं जलेगी। उनके दाह-संस्कार के बाद माना जाता है कि उनकी जीभ जैसी की तैसी बनी रही।

सन् 401-413 के बीच कुमारजीव ने तीन सौ चौरासी पुस्तिकाओं में चौहत्तर धर्मग्रन्थों का अनुवाद किया। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं :

* **सत्यसिद्धि शास्त्र** : अर्थात सत्य की पूर्णता का शास्त्र। इससे सम्बन्धित बीस पुस्तिकाएँ सन् 402-412 के बीच लिखी गईं।
* **अष्टसहस्रिका प्रज्ञापरमिता सूत्र** : अर्थात *विवेकपूर्णत सूत्र*। इसकी दस पुस्तिकाएँ सन् 408 में पूरी की गईं।
* **वज्रछेदिका प्रज्ञापरमिता सूत्र** : अर्थात *हीरक सूत्र*। एक पुस्तिका सन् 402-412 में पूरी की गई।
* **सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र** : अर्थात *कमल सूत्र* (Lotus)। इसकी आठ पुस्तिकाएँ हैं।
* **संक्षिप्त सुखवती व्यूह** : अर्थात *अमिताभ सूत्र*। इसकी एक पुस्तिका सन् 402 में पूरी की गई।
* **माध्यमक शास्त्र** : अर्थात *मध्यपरक टीका*। इसकी चार पुस्तिकाएँ सन् 409 में पूरी की गईं।
* **शतिक शास्त्र** : अर्थात सौ मन्त्रों में निबद्ध टीका। इसकी दो पुस्तिकाएँ सन् 409 में पूरी की गईं।
* **द्वादशमुख शास्त्र** : अर्थात बारह द्वारों के बारे में टीका। इसकी एक पुस्तिका सन् 409 में पूरी की गई।
* **सर्वास्तिवादिन विनय** : अर्थात, दस श्रेणियों के विनय परक टीका। इसकी इकसठ पुस्तिकाएँ सन् 404-409 के बीच पूरी की गई।

5.6 चीनी अनुवादक

चिह चिएन वोंग-वु वंश के शासन के दौरान सन् 200 के आसपास कुशान से चीन आए। उन्होंने *हीनयान* तथा *महायान* पन्थ के अठासी धर्मग्रन्थों का अनुवाद किया।

प्रसिद्ध चीनी बौद्ध-भिक्षु जुआन जंग (सन् 600-664) भारत आए। उन्होंने गौड़ राजा (बंगाल के उत्तरी पश्चिमी भाग पर शासन करने वाले) शशांक द्वारा बौद्धों के दमन की विभिन्न घटनाओं को लिपिबद्ध किया। उन्होंने बंगलादेश के विभिन्न भागों में प्रचलित *महायान* बौद्धधर्म को लिपिबद्ध किया। वे 657 संस्कृत पाठों को लेकर चीन वापस गए। वहाँ जाकर उन्होंने चांगन में एक विशाल अनुवाद केन्द्र की स्थापना की। इसमें पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों से छात्र और सहयोगी इकट्ठा हुए। कहा जाता है कि उनकी देखरेख में 600 से भी अधिक अनुवादक काम करते थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने धर्मग्रन्थों से सम्बन्धित 1330 पुस्तिकाओं का अनुवाद चीनी भाषा में किया। उनके पहले कुमारजीव 400 अनुवादकों की टीम के साथ काम करते थे। जुनजुआंग का जन्म सन् 600 के आसपास माना जाता है। उन्होंने बीस वर्ष की उम्र में दीक्षा ली। अन्य चीनी तीर्थ यात्रियों की तरह जुनजुआंग ने भी भारत की कष्टसाध्य यात्रा भारतीय बौद्ध तीर्थस्थलों के दर्शन के उद्देश्य से की। वे भारतीय बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में उस समय उपलब्ध अनुवाद से असन्तुष्ट थे। इसीलिए वे भारत आकर मूल ग्रन्थ प्राप्त करना चाहते थे और भारतीय गुरुओं से सीधे बौद्धधर्म की शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे। चीन में बौद्ध धर्मग्रन्थों के उस समय उपलब्ध अनुवादों से अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए वे कहते हैं, ''बुद्ध का जन्म पश्चिम में हुआ था, लेकिन उनका धर्म पूरब तक फैल गया है।'' अनुवाद के दौरान पाठ में शायद त्रुटियाँ आ गई होंगी, प्रयुक्त पदावलियों का गलत प्रयोग हुआ होगा। गलत शब्द, सही अर्थ को लुप्त कर देते हैं, गलत पदावली का प्रयोग मूल सिद्धान्त को ही विकृत कर देता है। जुआनजांग के मिशन की सफलता केवल उन 657 बौद्ध धर्मग्रन्थों में ही नहीं है जिन्हें वे भारत से लेकर चीन आए बल्कि उनके अनुवाद के उच्च स्तर से भी आँकी जा सकती है। प्राचीन काल के तीन महानतम चीनी अनुवादकों में उनकी गिनती की जाती है।

चीनी स्रोतों के अनुसार झूजिजिंग ही ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्हें संन्यास में दीक्षा दी गई थी। वे बौद्धधर्म की खोज में सन् 260 में मध्य एशिया गए थे। चौथी सदी से ही चीनी बौद्ध भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से बौद्धधर्म की खोज में भारत आने लगे थे।

फाहियान की भारत की तीर्थयात्रा (सन् 395-414) पहली महत्त्वपूर्ण यात्रा मानी जाती है। वे सिल्क रोड से होते हुए हिन्दुस्तान पहुँचे। यहाँ 16 वर्ष रहने के बाद वे समुद्री रास्ते से चीन वापस चले गए। सन् 627 में जुआनजांग की भारत-यात्रा के पहले ही बौद्ध मठों से सम्बन्धित संस्थाएँ और बौद्धधर्म के सिद्धान्त चीन में गहरी जड़ें जमा चुके थे। इस समय तक करीब-करीब सभी प्रारम्भिक धर्मग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया जा चुका था। तत्कालीन ताओवादी तथा कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों की परिधि के अन्दर बुद्ध के उपदेशों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका था। स्थानीय स्तर पर बड़ी संख्या में इनसे सम्बन्धित टीकाएँ लिखी जा रही थीं। फाहियान ने सन् 395-414 के बीच भारत की यात्रा की। उन्होंने गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित चम्पा के साम्राज्य की चर्चा की है। यहाँ उन्होंने पाया कि *महायान* बौद्धधर्म के लोगों के बीच अब भी जिन्दा है। वापस लौटने के बाद उन्होंने *महापरिनिर्वाण सूत्र* तथा विनय सम्बन्धी छह पुस्तिकाओं के पाठ की करीब चालीस पुस्तिकाओं का अनुवाद किया। उन्हें पहला महत्त्वपूर्ण चीनी तीर्थयात्री माना जाता था। उन्होंने *'बौद्ध साम्राज्यों के दस्तावेज : भारत, श्रीलंका आदि तीस देशों की यात्राओं का रिकार्ड'* नाम से पुस्तक लिखी। उन्होंने *महापरिनिर्वाण सूत्र* की छह पुस्तिकाओं का अनुवाद एवं *महासंघिका विनय* की 40 पुस्तिकाओं का अनुवाद बुद्धभद्र के साथ मिलकर सन् 416-418 के बीच पूरा किया।

फाहियान तथा जुआनजांग की तुलना में यिजिंग तथा इचिंग के कार्यों की ओर एशिया तथा विश्व इतिहास के छात्रों तथा विद्वानों का कम ध्यान गया है। यिजिंग ने अपनी भारत यात्रा सन् 671 में शुरू की तथा सन् 695 में वे चीन वापस लौटे। चीन वापस लौटने के पहले आधुनिक इण्डोनेशिया में स्थित अरिविजय साम्राज्य से उन्होंने दो अत्यन्त महवपूर्ण ग्रन्थों को पूरा किया और उन्हें चीन भेज दिया। उन्होंने दक्षिणी सागर से भारत में बौद्धधर्म के व्यावहारिक स्वरूप के रिकॉर्ड तथा महान तांग वंश के दौरान धर्म के नियमों की खोज में भारत तथा उसके पड़ोसी क्षेत्रों की यात्रा करने वाले प्रमुख संन्यासिनों के संस्मरणों को चीन भेजा। इनमें से पहले ग्रन्थ में भारत में बौद्धधर्म के सिद्धान्तों तथा मठों के कायदे-कानूनों की विस्तृत चर्चा है। दूसरे ग्रन्थ में सातवीं सदी में चीन से भारत आने वाले 56 चीनी बौद्ध भिक्षुओं की जीवनी विस्तारपूर्वक लिखी गई है। यिजिंग के संस्मरणों में भारत की यात्रा में झेले गए भयानक खतरों की चर्चा है। इसमें बताया गया है कि इन खतरों के बावजूद सातवीं सदी में भारी संख्या में बौद्ध-संन्यासी चीन से भारत आते रहे थे। इनमें से कुछ लोग जमीन के रास्ते मध्य एशिया और तिब्बत होते हुए भारत पहुँचे। यिजिंग की तरह कुछ अन्य लोग भी दक्षिण पूर्वी एशिया के बन्दरगाहों से होते हुए समुद्री रास्ते हिन्दुस्तान पहुँचे। इनमें से कुछ लोग चीन वापस चले गए तो कुछ लोग भारत में ही बस गए। कुछ लोगों की मृत्यु भारत में ही हो गई।

इन यात्रियों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है जुआनझाओ। यिजिंग ने उनकी जीवनी पहली पुस्तिका में लिखी है। वे जुआनझाओ की वंशावली बताते हैं और बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को सीखने के उनके अनुभवों की चर्चा करते हैं। उसमें तिब्बत से होते हुए भारत की उनकी लम्बी यात्रा, भारतीय मठों में प्राप्त शिक्षा और नेपाल तथा तिब्बत होते हुए चीन वापसी की कहानी शामिल है। चीन पहुँचते ही तांग वंश के सम्राट गाओजोंग ने उन्हें भारत जाकर चिकित्सक और आयु में वृद्धि करने वाली दवाएँ लाने के लिए वापस भारत भेज दिया। यिजिंग ने लिखा है कि जुआनझाओ सम्राट द्वारा माँगी गई चीजें प्राप्त करने में तो सफल रहे, लेकिन चीन वापस लौटने के पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। अन्य पचपन जीवनियाँ भी यह दिखाती हैं कि चीन के पुरोहित वर्ग (Clergy) में भारत के बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा और यहाँ रहकर अध्ययन करने की आकांक्षा कितनी प्रबल थी। चू फो-हिएन-ये बुद्धयशस के अनुवाद कार्य में सहयोगी थे। उन्होंने बारह धर्म ग्रन्थों की चौहत्तर पुस्तिकाओं का अनुवाद किया, जिसमें *दीर्घ-आगम* भी शामिल है। *दीर्घ-आगम* का अर्थ होता है दीर्घ उपदेश। उसकी बाइस पुस्तिकाएँ हैं और उसका अनुवाद सन् 412-413 में किया गया।

5.7 बौद्ध पाठों के अनुवाद की समस्याएँ

बौद्ध धर्मान्तरण की शुरुआत सम्राट अशोक के शासन काल (सन् 260-218) के दौरान मानी जाती है। बौद्ध परम्परा में इस बात का उल्लेख आता है कि ई.पू. दूसरी सदी में भारतीय-यूनानी सम्राट मिनाण्डर ने बौद्धधर्म अपनाया और अर्हत बन गए। अर्हत का अर्थ होता है 'पूर्णता प्राप्त' पुरुष जिसने 'इच्छा, घृणा और अज्ञान रूपी तीनो विष' पर

विजय प्राप्त कर ली हो। इसके बाद वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। दूसरे अर्थ में वह जन्म और मरण के चक्र से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

मौर्य सम्राट अशोक के पहले भारत वर्ष में बौद्ध धर्म का प्रसार बहुत धीमी गति से हो रहा था। अशोक और उनके वंश के अन्य सम्राटों के सहयोग से बौद्ध स्तूपों के निर्माण में तेजी आई। मौर्य साम्राज्य की विस्तृत सीमाओं के बाहर और पड़ोसी राष्ट्रों विशेष कर अफगानिस्तान के ईरानी भाषा-भाषी क्षेत्रों, मध्य एशिया, मौर्य साम्राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा से भी आगे, श्रीलंका तथा दक्षिण भारत में भी इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप बौद्धधर्म का फैलाव हुआ। इन दो विपरीत दिशाओं में फैलने वाले इस अभियान के कारण चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश हुआ और इसके साथ ही *थेरवाद* बौद्धधर्म का भी उदय हुआ जो श्रीलंका से लेकर दक्षिण पूर्वी एशिया के तटीय क्षेत्रों तक फैल गया।

थेरवाद मत का प्रसार भारतवर्ष से तीसरी सदी ई.पू. में शुरू हुआ और यह श्रीलंका, थाईलैण्ड तथा बर्मा होते हुए बाद में इण्डोनेशिया तक पहुँच गया। इस मत के दर्शन के अनुसार इस संसार की तीन मौलिक विशेषताएँ हैं—यह नश्वर और क्षणभंगुर है, संसार तत्त्वहीन है और अस्थायी भी। ई.पू. तीसरी सदी में धर्मगुप्त मत का प्रसार उत्तर में कश्मीर, गान्धार और बैक्ट्रिया (अफगानिस्तान) तक हुआ। दूसरी सदी में *महायान* सूत्र यहाँ से चीन होते हुए कोरिया और जापान तक पहुँचे और उनका अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। गूढ़ बौद्धधर्म की भारतीय अवधि के दौरान आठवीं सदी के उपरान्त बौद्धधर्म का प्रसार भारत के बाहर तिब्बत और मंगोलिया तक हुआ।

बौद्धधर्म से सम्बन्धित ग्रन्थ और रचनाओं के अनेक प्रकार हैं। बौद्धधर्म के अलग-अलग मतों में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के सीखने का अलग-अलग महत्त्व दिया जाता है। कुछ मत कुछ खास पुस्तकों को धार्मिक वस्तु के रूप में देखते हैं तो कुछ इनके प्रति अधिक विद्वतापूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं। बौद्ध धर्मग्रन्थ पालि, तिब्बती, मंगोलियाई, चीनी में लिखे गए हैं। कुछ ग्रन्थ संस्कृत तथा बौद्ध मिश्रित संस्कृत में भी इन देशों के विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं। विभिन्न भाषाओं में लिखे जाने के कारण इन ग्रन्थों में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों तथा अर्थ के बीच किसी प्रकार की समरूपता या समानता नहीं दिखाई देती। मौलिकता एक प्रकार से विकृत होकर इन ग्रन्थों में दिखाई देती है और विभिन्न देशों में इनका अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाता है।

कई अन्य धर्मों के विपरीत बौद्धधर्म के विभिन्न मतों के द्वारा किसी एक ग्रन्थ को आधार नहीं माना जाता है। इस कारण कई प्रकार की भ्रान्तियाँ पैदा होती हैं। *आगमों* को *महायान* मत में केवल प्रारम्भिक सूत्र माना जाता है और तिब्बती बौद्धधर्म में तो अधिकांश *आगमों* का अनुवाद भी नहीं किया गया है। बौद्धधर्म के अनुसार *आगमों* का अर्थ होता है विभिन्न उपदेशों (discourses) का एक स्थान पर संकलन जिन्हें संस्कृत में सूत्र और पालि में सुत्त कहा जाता है। बौद्धधर्म की प्रारम्भिक मीमांसा में इनका प्रयोग हुआ है और चीनी परम्परा में इन्हें सुरक्षित रखा गया है। अन्य विद्वानों का कहना है कि बौद्धधर्म में कोई भी सर्वस्वीकृत केन्द्रीय पुस्तक या पाठ नहीं है। बौद्ध समाज सुधारक बाबा साहब अम्बेडकर तथा कुछ अन्य विचारकों द्वारा बौद्धधर्म के सूत्रवाक्यों (cannons) की विशालता और जटिलता को बौद्धधर्म के अन्तर्निहित दर्शन को समझने में एक बाधा के रूप में देखा गया है।

थेरवाद बौद्धमत को मानने वाले लोग पालि-उपदेशों (cannons) को आधारभूत तथा प्रामाणिक मानते हैं। *महायान* बौद्ध मतावलम्बी *महायान* सूत्रों तथा अपने विनय को ही अपनी आस्था एवं दर्शन का मूल मानते हैं। बौद्ध धर्मग्रन्थों में विनय का अर्थ होता है धर्म द्वारा निर्धारित मर्यादाओं (discipline) का समूह। पालि सूत्रों तथा इनसे जुड़े हुए अन्य धार्मिक पाठों को अन्य बौद्धमतों में *आगम* के रूप में स्वीकार किया जाता है।

लम्बे समय से लोगों ने बौद्धधर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को एक स्थान पर इकट्ठा कर एक बौद्ध धर्मग्रन्थ सुसंगठित करने की चेष्टा की है। *थेरवाद* मत के अन्दर अध्ययन के लिए कुछ सूत्रों को चुनकर इकट्ठा किया गया। इसके अन्दर प्रचलित और महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थों को एक खण्ड में संग्रहित किया गया जिसका अध्ययन प्रारम्भिक दौर में बौद्ध संन्यासियों द्वारा किया जाता था। बाद में श्रीलंका में धम्मपद को इसी प्रकार एकीकृत करने वाले धर्मग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई।

हाल में बाबा साहब अम्बेडकर ने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को एक स्थान पर इकट्ठा करने की दृष्टि से *'दि बुद्धा एण्ड हिस धम्म'* नामक पुस्तक लिखी। आज भी ऐसी अनेक कोशिशें की जा रही हैं, लेकिन किसी भी एक ग्रन्थ को बौद्धधर्म के प्रतिनिधि धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकृति नहीं मिल पाई है।

5.8 सारांश

भारत, एशिया के अन्य हिस्सों तथा चीन के विद्वानों ने मिलकर जिस प्रकार श्रमसाध्य ढंग से बौद्ध धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया उसे देखकर आज आश्चर्य होता है। भारत के अनेक विद्वान कठिन यात्रा कर चीन गए और इस कठिन कार्य को पूरा करने के लिए वहाँ कई वर्षों तक रहे। वहाँ उन्होंने चीनी भाषा सीखकर अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया। गैर चीनी विद्वानों में सबसे उल्लेखनीय नाम कुमारजीव का है। इसी प्रकार अनेक चीनी विद्वानों तथा यात्रियों ने जमीन और समुद्र के रास्ते कठिन यात्रा की और भारत पहुँचे। यहाँ कई वर्षों तक रहकर उन्होंने संस्कृत तथा पालि भाषा का ज्ञान अर्जित किया और इसके बाद बौद्ध धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। जुआन झांग तथा फा-जिआन (Faxian) इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। सन् 200 के बाद बौद्ध संन्यासियों द्वारा अनुवाद सम्बन्धी जो सिद्धान्त अपनाए गए थे वे पहले मौखिक रूप में संरक्षित थे; बाद में चलकर उन्हें सीधे संस्कृत से प्राचीन चीनी लिपि में लिखा गया। चूँकि उस जमाने में कागज की खोज नहीं हुई थी, इसलिए उन्हें बाँस के लट्ठों पर लिखा गया था। पहली नजर में ये कई बार दिखाई भी नहीं देते थे, कई बार उन्हें समझ पाना काफी मुश्किल होता था। प्रारम्भिक बौद्ध अनुवादकों के लिए सबसे बड़ी समस्या थी नई घटनाओं को अपनी भाषा में अभिव्यक्त कर पाना। इसके लिए नए शब्द और नए चीनी संकेतों का निर्माण किया जाता था। इससे चीनी भाषा की सुन्दरता में और भी वृद्धि होती थी।

दूसरी समस्या थी कम से कम दो भाषाओं–संस्कृत या पालि और चीनी का ज्ञान। अनुवाद का काम भारत तथा मध्य एशिया से आने वाले बौद्ध संन्यासी तथा चीनी संन्यासी मिलकर किया करते थे। पश्चिमी क्षेत्र से आनेवाले बौद्ध भिक्षुओं का चीनी भाषा ज्ञान बहुत सीमित था। वे मुश्किल से कुछ वाक्य बोल पाते थे। चीनी लोगों को भी बौद्धधर्म की बहुत थोड़ी जानकारी थी और वे भी कोई विदेशी भाषा नहीं बोल पाते थे। व्यक्तिवाचक संज्ञा के संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद में सबसे ज्यादा कठिनाई होती थी। इस बात पर अधिक बहस होती थी कि उस व्यक्तिवाचक संज्ञा का अनुवाद उसके अर्थ के आधार पर किया जाए या उनके उच्चारण के आधार पर लिप्यन्तरण किया जाए। दूसरी समस्या थी बौद्ध पाठों के सही अर्थ को समझने और उन्हें चीनी भाषा में अभिव्यक्त करने की। स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति अर्थ को अलग-अलग ढंग से समझता है और यही बात अनुवाद पर भी लागू होती है। लेकिन बाद में चलकर बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद अधिक सटीक ढंग से होने लगा। विशेष रूप से सोलहवीं सदी के बाद अनुवाद के स्तर में अच्छा सुधार हुआ, जब विद्वान अनुवाद किए जाने वाले पाठ की भाषा तथा अर्थपूर्ण चीनी शब्दों के प्रयोग के लिए अधिक वैज्ञानिक तरीकों का इस्तेमाल करने लगे। इसी दिशा में जापानी तथा तिब्बती विद्वानों तथा संन्यासियों ने भी बड़ा योगदान किया। बौद्ध धर्मग्रन्थों के बारे में उनकी समझ और जापानी भाषा में उनके अनुवाद ने भी अनुवाद-प्रक्रिया को बेहतर बनाने में मदद की।

बाद में चीनी अनुवाद के तकरीबन 900 वर्षों के इतिहास में अनुवाद का स्तर ऊँचा उठा और कोशिश की गई कि अनूदित पाठ चीनी भाषा की सहजता के साथ दिखाई दे। बौद्धधर्म के अनेक विचारों के लिए चीनी भाषा में समतुल्य शब्द उपलब्ध नहीं थे। इसलिए कई अनुवादकों ने इन अवधारणाओं को तथा बौद्धधर्म की मान्यताओं को स्थानीय *ताओवादी* विचारों के रूप में अभिव्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया, जिसे समझना सबके लिए आसान था।

चीनी बौद्धधर्म और भारतीय बौद्धधर्म के बीच पाए जाने वाले अन्तर की जड़ शुरुआती दौर के अनुवाद में देखी जा सकती है। नए पदों के निर्माण का कई बार अद्‌भुत परिणाम होता था। उदाहरणार्थ फारस के पार्थमासिरीस को बौद्धधर्म के शुरुआती अनुवादकों में गिना जाता है। इन्होंने *प्रणायाम* से सम्बन्धित अवधारणा *'अनापान'* के 'ध्वनि तथा अर्थ' को चीनी भाषा में अभिव्यक्त करने की कोशिश की। शुरुआत में उन्होंने इस शब्द का केवल लिप्यन्तरण किया, लेकिन इतना काफी नहीं था, क्योंकि चीनी भाषा में इस शब्द का कोई अर्थ नहीं होता था। लेकिन बौद्ध संस्कृति में *अनापान* का अर्थ होता है मन के द्वार को हर प्रकार के विचार के लिए बन्द कर देना; अर्थात् मन को चिन्तनविहीन कर लेना। इस प्रकार ये दोनों मौलिक विचार एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं।

बौद्ध धर्मग्रन्थ का चीन में प्रवेश तथा चीनी भाषा में इसका अनुवाद 1200 वर्षों से भी अधिक समय तक चलता रहा। अनुवाद का कार्य हान वंश के उत्तर काल (दूसरी सदी) में शुरू हुआ। कमोबेश यह कार्य सोंग वंश के समापन तथा युआन वंश की शुरुआत (13वीं सदी) तक चलता रहा।

अनुवाद का यह कार्य जब चीन में शुरू हुआ, उस समय चीनियों को इस बात की जानकारी नहीं थी कि भारत में बौद्धधर्म विभिन्न सम्प्रदायों और मतों में बँट चुका है जो एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं। उनकी शिक्षाएँ और उपदेश भी कई बार एक दूसरे के विपरीत होती थीं। अनुवाद कार्य के प्रारम्भिक दौर में उन सभी पुस्तकों तथा पाठों का अनुवाद किया गया था, जो महत्त्वपूर्ण दिखाई देते थे। सदियों तक कई पुस्तकों तथा पाठों को बार-बार अनूदित किया गया। इस क्रम में वह पदावली और उसकी समझ बेहतर होती गई।

धर्मग्रन्थों की आधिकारिक प्रतियों को सुरक्षित रखने तथा उन्हें विकृत होने से बचाने के लिए सातवीं सदी के प्रारम्भ से ही मुद्रण तकनीक का इस्तेमाल किया जाने लगा था। इसकी शुरुआत उत्तरी चीन के एक छोटे से मठ में रहने वाले बौद्ध-संन्यासी द्वारा की गई, जिसने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थों को शिलाओं पर अंकित करना शुरू किया। यह प्रक्रिया सदियों तक चलती रही और आज ऐसी 14000 शिलाएँ उपलब्ध हैं, जिन पर चीनी बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त से सम्बन्धित सैकड़ों पाठ खुदे हुए हैं। सम्पूर्ण बौद्ध त्रिपिटकों के सम्पूर्ण पाठ को एकत्रित कर चीनी भाषा में लोगों को उपलब्ध कराने की दिशा में एक समूह द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए हैं। जनवरी 1998 में जापानी विश्वविद्यालय के उक्त समूह ने दाइजो शुप्पांशा के साथ एक करार किया, जिसके द्वारा इसे *ताइशो त्रिपिटक* का इलेक्ट्रॉनिक डाटाबेस बनाकर इण्टरनेट पर उपलब्ध करवाने का अधिकार दिया गया। इस कार्यक्रम के पूरे होने की निर्धारित अवधि 2006 थी।

इससे बिल्कुल हटकर सन् 1999 के प्रारम्भ में पता चला कि हांगकांग के एक बौद्ध समूह ने सम्पूर्ण चीनी *बौद्ध त्रिपिटक* की सी.डी. बनाई है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि *ताइशो त्रिपिटक* के 85 खण्डों को सी.डी. में उपलब्ध करा दिया गया है। दुर्भाग्यवश इसे केवल उसी सॉफ्टवेयर द्वारा पढ़ा जा सकता है जो सी.डी. बनाने वालों ने उपलब्ध कराया था, जिसके लिए माइक्रोसॉफ्ट विण्डोज का परम्परागत चीनी स्वरूप जरूरी है। कोरियाई त्रिपिटक की ही तरह यह सॉफ्टवेयर की भी कोशिश है कि कम्प्यूटर-स्क्रीन पर इसे हम किताब की तरह पढ़ सकें। लेकिन इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की नई सम्भावनाओं के प्रयोग की दृष्टि से यह एक असफल प्रयास है।

5.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद की कठिनाइयों के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
2. भारत और चीन को जोड़ने में धर्म की भूमिका पर प्रकाश डालें।
3. बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद की मुख्य समस्याएँ क्या हैं?

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- हान यू, *'सोर्सेज ऑफ चाइनीज ट्रेडिशन, सिरका 800'।*
- हिल जॉन ई (2009), *थ्रू दि जेड गेट टू रोम : अ स्टडी ऑफ दि सिल्क रूट्स ड्यूरिंग द' लेटर हान डायनेस्टी, फर्स्ट टु सेकेंड सेंचुरीज,* सी. ई. जॉन ई. हिल. बुकसर्ज, शार्लटन, साउथ कैरोलीना, ISBN 978-5-4392-2134-1.
- http://www.budhistdoor..com/oldweb/bdoor/archive/hutshell/teach47.htm
- मुलिन, ग्लेन एच. *दि फोर्टीन दलाई लामाज : अ सेक्रेड लेगेसी ऑफ रीइनकार्नेशन्स (2001),* क्लीयर लाइट पब्लिशर्स, ISBN 5-57416-092-3.
- वेल्च, होम्स, *दि प्रैक्टिस ऑफ चाइनीज बुद्धिज्म,* केम्ब्रिज, मास : हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967।
- वेल्च, होम्स, *दि बुद्धिस्ट रिवाइवल इन चाइना,* केम्ब्रिज, मास : हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968।

इकाई 6 बौद्ध ग्रन्थों के पूर्वीय भाषाओं में अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 प्राचीन एशियाई सन्दर्भ में अनुवाद

6.3 एशियाई देशों में अनुवाद-कार्य

6.4 चीन में अनुवाद-कार्य

6.5 महान अनुवादक कुमारजीव

6.6 महान अनुवादक परमार्थ (सन् 503-569)

6.7 महान अनुवादक बोधिधर्म (अथवा धर्मबोधि)

6.8 महान अनुवादक युवान-च्वांग (सन् 602-664)

6.9 महान अनुवादक बोधिरुचि (सन् 571-627)

6.10 तिब्बती मंगोलियाई अनुवाद परम्परा

6.11 कोरियाई जापानी अनुवाद परम्परा

6.12 अनूदित कथा साहित्य

6.13 अनूदित फारसी-अरबी साहित्य

6.14 आधुनिक काल में अनुवाद

6.15 सारांश

6.16 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

यह इकाई बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करने वाले शिक्षार्थियों को बौद्ध ग्रन्थों के पूर्वीय भाषाओं में अनुवाद की परम्परा की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। पिछली इकाई में आपने बौद्ध धर्मग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद की परम्परा के विविध पक्षों की जानकारी हासिल की। इस पाठ को पढ़ते हुए आप जान सकेंगे कि–

- प्राचीन एशियाई सन्दर्भ में अनुवाद का क्या महत्त्व रहा है?
- एशियाई देशों में अनुवाद-कार्य की क्या स्थिति रही है?
- अनुवाद की सर्वास्तिवादी परम्परा क्या और कैसी थी?
- चीन के अलावा अन्य एशियाई क्षेत्रों में अनुवाद-कार्य की स्थिति क्या थी?
- तिब्बती मंगोलियाई अनुवाद परम्परा और कोरियाई जापानी अनुवाद परम्परा क्या है? और इन सबने अनुवाद के सार्वभौमिक परिदृश्य को किस तरह समृद्ध किया?

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत, पालि, प्राकृत परम्पराओं में भी अनुवाद का अर्थ कही हुई बात को फिर से कहना है। किसी बात को दुहराना, एक ही बात को दुबारा, तिबारा, अनेक बार कहना अनुवाद की परिधि में आता है। किसी बात की व्याख्या करते हुए उसे अनेक शब्दों में, अनेक प्रकार से दुहराना या व्यक्त करना अनुवाद है। अर्थात् बार-बार दोहराना, व्याख्या, दृष्टान्त आदि के सहारे किसी बात को स्पष्ट करना अनुवाद कहलाता है।

अंग्रेजी भाषा के शब्द 'ट्रान्सलेशन' का समानार्थी हिन्दी में 'अनुवाद' है, पर शब्द विन्यास से देखें तो अंग्रेजी के मूल स्वभाव से यह अर्थ थोड़ा हट कर है। किसी एक भाषा के पाठ को अन्य भाषा में दुहराने के अर्थ में यह रूढ हो गया है।

6.2 प्राचीन एशियाई सन्दर्भ में अनुवाद

प्राचीन साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में 'अनुवाद' शब्द अपने मूल अर्थ में वेदों के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद की बहुत-सी ऋचाओं को गेय बनाकर सामवेद में सम्मिलित किया गया है। यह अनुवाद कार्य वेद की बोलियों या भाषाओं के प्रारम्भिक दौर का है। यजुर्वेद में व्यक्त यज्ञों के अनुष्ठान की विधियों की झलक ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती है। इसे भी 'अनुवाद' शब्द से व्यक्त किया जा सकता है।

भाषान्तरण के अर्थ में अनुवाद का प्रथम प्रयोग हमें बौद्ध वांग्मय में मिलता है। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं की प्रकृति को इसका श्रेय जाता है। बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं को किसी कुल, वर्ण, क्षेत्र, नस्ल, जाति और लिंग-भेद की सीमाओं में जकड़ा नहीं। सबके लिए खुली छूट दी। फलतः उनकी शिक्षाओं का प्रसार और विस्तार बेरोक-टोक हुआ। इस सम्बन्ध में *चुल्लवग्ग* में वर्णित एक घटना का उल्लेखनीय है। इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार गौतम बुद्ध और उनके शिष्यों ने अनुवाद की दिशा में अपूर्व योगदान किया और किस प्रकार उन्होंने अनुवाद-कार्य को दिशा दी, उसे विश्व-क्षितिज पर प्रकाशित किया। बौद्ध संघ के प्रारम्भिक दौर में जब गौतम बुद्ध मगध क्षेत्र (आधुनिक बिहार) में अपनी शिक्षाओं का प्रचार कर रहे थे, सुदूर उत्तर-पश्चिम के देश (जो अब पाकिस्तान में है) से दो ब्राह्मण परिव्राजक मगध आए और गौतम बुद्ध के संघ में प्रविष्ट हुए। उनके नाम यमेळू और तेकुल थे। उन्हें यह देख कर बड़ी बेचैनी हुई कि भगवान बुद्ध की उदात्त शिक्षाओं को उनके शिष्य जनभाषाओं में उच्चरित कर प्रचार कर रहे थे। उन्होंने भगवान बुद्ध से प्रार्थना की कि उन्हें इस बात की अनुमति दी जाए कि वे भगवान की उदात्त शिक्षाओं को छान्दस (वेदों की भाषा या बोली) में अनूदित कर दें। गौतम बुद्ध ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि 'भिक्खुओ! मैं तुम्हें अपनी-अपनी भाषा या बोली में बुद्ध-वचन को ढाल कर जानने समझने की अनुमति देता हूँ *(चुल्लवग्ग का पालि-पाठ–अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया बुद्धवचनं परियापुणितुं)*। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपनी शिक्षाओं को उस भाषा या बोली में करने से मना कर दिया जो उस समय जन-प्रचलित नहीं थी और समझने में दुरूह हो गई थी। इसके विपरीत उन्होंने अपने शिष्यों को अपनी-अपनी भाषा या बोली में अनूदित करके जानने और समझने की अनुमति दी। बुद्ध के इस निर्णय ने भाषान्तरण या अनुवाद करने की दिशा में क्रान्ति पैदा कर दी और बुद्ध की शिक्षाओं को अनेक भाषाओं और बोलियों में अनूदित करने का सिलसिला बन गया। यही कारण है कि कुछ सदियाँ बीतते-बीतते बुद्ध-वचन एशिया की अनेक भाषाओं में उपलब्ध होने लगे।

अनुवाद की एशियाई परम्परा में गौतम बुद्ध के प्रथम दो शिष्यों का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ये दोनों शिष्य–तपुस और भल्लिक–व्यापारी थे और उत्कल (आधुनिक उड़ीसा) से अपने व्यापार के सिलसिले में अफगानिस्तान जा रहे थे। भगवान बुद्ध उस समय बोधि-प्राप्ति के तुरन्त बाद उरुवेला (गया के पास) में थे। उनसे उनकी बातें हुई, उन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया, उन्हें भोजन कराया और अपने व्यापार के रास्ते पर निकल पड़े। *त्रिपिटक* तो इस बात पर मौन है कि उनकी बातें किस भाषा या बोली में हुईं और अफगानिस्तान में व्यापार के सिलसिले में किन-किन भाषाओं या बोलियों का इस्तेमाल किया गया, या कि वे अनुवादक साथ रखते थे या फिर किन्हीं अन्य विधियों से आदान-प्रदान होता था। उन्होंने भगवान बुद्ध के वचनों का जहाँ-जहाँ परिचय कराया होगा, उसमें भी कुछ भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया होगा। यहाँ पर चूँकि बौद्ध ग्रन्थ इस सम्बन्ध में मौन है, इसलिए इस विषय में विस्तार से बता पाना कठिन है।

अनुवाद की परम्परा में भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य महाकच्चायन का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि यमेळ-तेकुल, तपुस-भल्लिक आदि का। उनका जन्म उज्जैन में हुआ था और वे वहाँ के राजा चण्डपज्जोत के राजपुरोहित के पुत्र थे। संघ में प्रवेश के बाद भगवान बुद्ध ने उन्हें अवन्ति देश में धर्म-प्रचार के लिए भेजा था। उन्होंने बड़ी कुशलता से मगध-कोसल देशों की भाषाओं में उपलब्ध बुद्ध-वचन को अवन्ति देश की भाषा में अनूदित करके जन-जन तक प्रचारित किया था। यहाँ पर यह बात स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध इस बात से अवगत थे कि भिक्खु महाकच्चायन के अलावा कोई अन्य व्यक्ति इस कार्य को नहीं कर सकता था, क्योंकि महाकच्चायन मगध-कोसल की भाषाओं के जानकार थे और अवन्ति देश की भाषा के पण्डित। महाकच्चायन की दूसरी विशेषता यह थी कि वे संक्षिप्त या सूत्र रूप में कही हुई भगवान बुद्ध की बातों (वचनों) को खण्ड-खण्ड कर, टुकड़े-टुकड़े कर विस्तार के साथ समझाने में कुशल थे।

इसी प्रकार भिक्खु पुण्ण (संस्कृत में पूर्ण) की कथा भी अनुवाद-विद्या में मील के पत्थर के रूप में गिनाई जा सकती है। वे सूनापरन्त देश (आज का पश्चिमी-उत्तरी महाराष्ट्र और पश्चिमी-दक्षिणी गुजरात) के सुप्पारक नगर के किसी गहपति (वैश्य) के पुत्र थे। बड़े होने पर वे एक कारवाँ के साथ सावत्थी (श्रावस्ती) गए। वहाँ पर भगवान बुद्ध के उपदेशों को सुनकर भिक्खु बन गए। भगवान बुद्ध ने *पुण्णोवाद सुत्त* का उपदेश उन्हीं को लक्ष्य करके किया था। सूनापरन्त लौट कर उन्होंने सफलतापूर्वक धर्म प्रचार किया और प्रसिद्धि पाई। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे मधुरभाषी थे। लोगों की कठोर और आक्रोशपूर्ण बातों को सुन कर भी वे मधुर बातें ही किया करते थे। यही कारण है कि वे सूनापरन्त देश में धर्म-प्रचारक (missionary) के रूप में सफल हुए, जब कि सूनापरन्त देश के लोगों के विषय में कहा जाता है कि वे बड़े चण्ठ, क्रूर और कठोर थे।

मज्झिमनिकाय के *अस्सलायन सुत्त* से पता चलता है कि 'कम्बुज' या 'कम्बोज' देश (आधुनिक अफगानिस्तान का उत्तरी-पश्चिमी भाग) में जो समाज था, उसमें दो ही वर्ग थे—अरिय (मालिक) और दास (गुलाम)। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध को कम्बोज समाज का अच्छा ज्ञान था। यह ज्ञान किस स्रोत से आया होगा, यह विचारणीय है। यह अनुवाद कार्य तत्कालीन संचार माध्यमों के माध्यम से ही हो सका होगा। वर्ण-व्यवस्था के खण्डन के सम्बन्ध में बुद्ध जिस विश्वास के साथ वहाँ प्रचलित दो वर्गों की बात करते हैं, उससे लगता है कि उत्तर भारत (प्राचीन मध्य मण्डल) और उत्तरी-पश्चिमी अफगानिस्तान के बीच नियमित आवागमन रहा होगा।

गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण (देहान्त, मौत) के कुछ महीनों बाद बौद्धों की प्रथम संगीति राजगृह (आधुनिक राजगीर) में हुई थी। उसमें पाँच सौ बौद्ध सन्त (अरहन्त) इकट्ठे हुए थे, अलग अलग क्षेत्रों से आए सदस्यों ने अनुवाद के सहारे ही संगीति (महासम्मेलन) का संचालन किया होगा, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

सिकन्दर-डेरियस-चन्द्रगुप्त के युग में ग्रीस के शासकों की ओर से ईरान और भारत पर अनेक हमले हुए थे। सिकन्दर ने डेरियस की विशाल सेना को परास्त कर ईरान पर कब्जा किया था और उसी प्रकार भारत-पाकिस्तान क्षेत्र के अनेक शासकों को हराया था। कालान्तर में उसके प्रधान सेनापति सेल्यूकस ने भी जीत हासिल की थी। भारतीय व ग्रीक स्रोतों से पता चलता है कि सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त मौर्य के बीच सन्धि के कारण विजित क्षेत्रों का आदान-प्रदान हुआ था। अब प्रश्न खड़ा होता है कि उस युग में संचार का माध्यम क्या था। ऐसा तो लगता है कि बड़ी संख्या में दुभाषिए रहे होंगे, जो एक क्षेत्र की बातें दूसरे क्षेत्रों तक पहुँचाते होंगे। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज पाटलिपुत्र में नियुक्त था। उसने इण्डिका (Indica, 4th century B.C.) के माध्यम से जो सूचनाएँ संकलित की थीं, उससे 'अनुवाद' की तत्कालिक व्यवस्था का आभास मिलता है।

राजनीतिक गतिविधियों के अलावा और उसके माध्यम से संचार विस्तार के साथ-साथ धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ बड़ी तेज हुई थीं। ई.पू. चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति हुई थी। उसमें सात सौ थेर भिक्खु (वरिष्ठ बौद्ध संन्यासी) सम्मिलित हुए थे। वे उन सभी क्षेत्रों से थे जहाँ बौद्ध धर्म पहुँच चुका था और उसके विषय में प्रभूत जानकारी मिल गई थी। यों तो बताया जाता है कि संगीति का संचालन मागधी (पालि भाषा) में ही हुआ था, किन्तु सुदूर देशों से आए प्रतिनिधियों की अपनी-अपनी भाषाओं और बोलियों का भी समागम हुआ था। स्पष्ट है कि यह सारा कार्य बौद्धों के अनुवाद-दल के माध्यम से ही हुआ था।

इसके पश्चात् तीसरी सदी ई.पू. के मध्य में अनुवाद कार्य बड़ी तेजी से आगे बढा, जब सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में अपनी रुचि दिखाई। दीपवंस और महावंस के अनुसार उसके संरक्षण में तीसरी बौद्ध संगीति बुलाई गई, जिसमें एक हजार वरिष्ठ भिक्खु सम्मिलित हुए। इस संगीति में बुद्ध-वचन का तीसरी बार वाचन और संकलन हुआ। यह संगीति पाटलिपुत्र के अशोकाराम (बौद्धों का आश्रम) में हुई थी, जिसमें बुद्ध-वचन के संकलन को अन्तिम रूप दिया गया।

इस संगीति का प्रभाव अनुवाद कार्य पर बड़े व्यापक रूप में पड़ा। संगीति के बाद अनेक क्षेत्रों में धर्म-प्रचारक भेजे गए। इस कार्य में इस बात का ध्यान रख गया था कि उन उन क्षेत्रों में वैसे ही धर्मप्रचारक भेजे गए, जो वहाँ की भाषाओं और बोलियों से परिचित थे।

सम्राट अशोक ने प्रशासन की दृष्टि से क्षेत्र-क्षेत्र में अपने दूत भेजे, जो वहाँ-वहाँ की भाषाओं से परिचित थे। यही नीति उन्होंने शिलालेखों पर उपने सन्देश खुदवा कर प्रचारित करने में भी अपनाई। उनके सन्देश विविध भाषाओं और बोलियों में थे। जैसा कि प्रायः सर्वत्र सरकारी तन्त्र में होता है किसी भी सरकारी फरमान (आदेश, अध्यादेश) का मसौदा स्वीकृत राजभाषा में तैयार किया जाता है, बाद में आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर प्रचार या संचार के लिए विविध भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया जाता है, ताकि उसे अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सके। यहाँ ध्यान देने की बात है कि क्या अनुवाद कार्य व्यक्तिगत आधार पर कराया जाता था या फिर उसके लिए अनुवादक मण्डल (Translation Beaureu) बनाए थे, जैसा कि बाद के कालों में चीनी और तिब्बती शासकों के सन्दर्भ में हुआ। इस विषय में कुछ भी कह पाना कठिन है, क्योंकि उस युग के कोई भी साक्ष्य आज उपलब्ध नहीं हैं।

6.3 एशियाई देशों में अनुवाद-कार्य

यों तो सम्राट अशोक के शासनकाल में धर्मप्रचार के अनेक प्रतिनिधि-मण्डल अनेक देशों में भेजे गए। उन्होंने अपना अपना कार्य बखूबी पूरा किया। किन्तु उनमें से जिस प्रतिनिधि-मण्डल का कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण था वह था भदन्त महिन्द के नेतृत्व में सिंहल (आज का श्रीलंका) भेजा गया प्रतिनिधि-मण्डल। इस प्रतिनिधि-मण्डल के मुखिया थे– भदन्त महिन्द (महेन्द्र)। उनके साथ जो चार अन्य भिक्खु गए थे, उनके नाम हैं– इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल और भद्दसाल। इस भिक्खु प्रतिनिधि-मण्डल के लगे-लगे ही एक और प्रतिनिधि-मण्डल सिंहल गया, वह भिक्खुनियों (बौद्ध संन्यासिनियों) का प्रतिनिधि-मण्डल था। उसकी मुखिया थीं–भिक्खुनी संघमित्ता (संघमित्र)। दोनों प्रतिनिधि-मण्डल उत्कल होते हुए समुद्र के रास्ते श्रीलंका गए थे। प्राचीन इतिहास के साक्ष्य इस बात पर सहमत हैं कि उत्कल और श्रीलंका व्यापार के रास्ते पर थे और दोनों देशों में आवागमन बहुत अधिक था।

यहाँ उत्कल का प्रसंग इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि आज उपलब्ध पालि त्रिपिटक की भाषा या बोली का मूलस्थान क्या उत्कल था? कई विद्वानों ने अन्य कई स्थानों की पहचान की है, जिनमें प्रमुख हैं–मगध, कोसल, अवन्ति, मध्यप्रदेश में विदिशा का भूभाग, गुजरात का गिरनार क्षेत्र आदि। यहाँ पर त्रिपिटक की भाषा-बोली के मूलस्थान पर निर्णय इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसी आधार पर श्रीलंका में ई.पू. 29-28 में राजा वट्टगामिणी अभय के शासन-काल में उसका अगला *संगायन* (वाचन और संकलन) हुआ था। उस संगीति में (जिसे थेरवादी बौद्ध परम्परा चौथी संगीति मानती है) पूरे *बुद्ध-वचन (त्रिपिटक)* को पत्थरों की पट्टियों पर कुरेदा गया था। भारत के धार्मिक इतिहास में यह पहली घटना थी, जब किसी धर्मग्रन्थ या धर्मग्रन्थों को लेखबद्ध किया गया। श्रीलंका में धर्मप्रचार के लिए इस पूरे *त्रिपिटक* को सिंहली भाषा में अनूदित किया गया। अनुवाद की उस कार्य-शृंखला में भारत से गया पूरा का पूरा भिक्ख-दल और भिक्खुनी-दल सम्मिलित था। भदन्त महिन्द उन दलों के मुखिया थे। यहाँ प्रश्न उठता है कि उन प्रतिनिधि-मण्डलों को सिंहली भाषा के अच्छे जानकार (जिन्हें पालि भाषा की भी अच्छी पकड़ रही हो) कहाँ से मिले। इसका उत्तर यह है कि चूँकि भदन्त महिन्द के दल में उत्कली (ओड़िया) लोग थे, इसलिए कोई समस्या नहीं हुई, क्योंकि वे उत्कली व्यापारिक संगठनों से जुडे हुए थे, जिनका सम्बन्ध श्रीलंका से स्थापित था। फलतः बौद्ध धर्म का प्रचार कार्य बड़ी तेजी से हुआ। इसके पीछे राजप्रश्रय भी सहायक रहा होगा।

भदन्त महिन्द की देखरेख में जो तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ वह था सिंहली भाषा में *अट्ठकथाओं* (त्रिपिटक के ग्रन्थों पर व्याख्यापरक टीकाएँ) का निर्माण। बौद्ध अनुश्रुति है कि श्रीलंका जाने वाले भिक्खुओं और भिक्खुनियों के प्रतिनिधि-मण्डल अपने साथ पालि *त्रिपिटक* के अलावा पूरा पालि अट्ठकथा साहित्य (द्रष्टव्य : समन्तपासादिका की *बहिरनिदानवण्णना)* भी श्रीलंका ले गए थे, सिंहली *अट्ठकथाएँ* उन्हीं पालि अट्ठकथाओं के अनूदित-पाठ थे। तर्कपूर्ण दृष्टि से यह अनुश्रुति अत्यन्त दुर्बल है, क्योंकि त्रिपिटक की भाषा-शैली और *अट्ठकथाओं* की भाषा-शैली में इतना अन्तर है कि दोनों एक काल की रचनाएँ स्वीकृत ही नहीं हो सकतीं।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार पूरा *त्रिपिटक* मौखिक रूप में श्रीलंका ले जाया गया, उसी प्रकार बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार पालि *अट्ठकथाएँ* भी ले जाई गई थीं। यदि यह तथ्य है तो सिंहली *अट्ठकथाएँ* मूल कृतियाँ न होकर पालि *अट्ठकथाओं* का सिंहली अनुवाद थीं। पालि *अट्ठकथाओं* को श्रीलंका ले जाने वाली बात इसलिए भी खारिज हो जाती है कि श्रीलंका नरेश वट्टगामिणी अभय के समय में आयोजित जिस बौद्ध संगीति में *त्रिपिटक* पहली बार लेखबद्ध हुआ, उसमें पालि *अट्ठकथाओं* के लेखबद्ध होने या किए जाने की बात कहीं नहीं कही गई है।

चौथी-पाँचवीं सदी के महान अट्ठकथाकार आचरिय बुद्धघोस की *अट्ठकथाओं—सुमंगलविलासिनी, पपंचसूदनी, सारत्थपकासिनी, मनोरथपूरणी (दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय* और अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथाएँ) और अन्य अट्ठकथाओं के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि आचरिय बुद्धघोस ने—*महा-अट्ठकथा, महापच्चरी या महापच्चरिय, कुरुन्दी या कुरुन्दिय, अन्धट्ठकथा, संखेपट्ठकथा, आगमट्ठकथा, आचरियानं समानट्ठकथा* —आदि प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का या तो पालि में अनुवाद किया या फिर उनसे प्रभूत सामग्री लेकर अपनी अट्ठकथाओं में उनका उपयोग किया। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य बुद्धदत्त, आचार्य बुद्धघोस और आचार्य धम्मपाल के काल में सिंहली अट्ठकथाएँ अस्तित्व में अवश्य रही होंगी। यदि यह तथ्य है तो उपर्युक्त आचार्यों द्वारा पालिभाषा में उनका प्रत्यनुवाद भी एक इतिहास-सम्मत तथ्य है।

आचरिय बुद्धघोस के वरिष्ठ और कनिष्ठ समकालिक आचरिय बुद्धदत्त और आचरिय धम्मपाल हुए हैं। उन्होंने भी कई अट्ठकथाएँ लिखी हैं और इस प्रकार सिंहली *अट्ठकथाओं* से अनुवाद के रूप में पालि *अट्ठकथाएँ* लिखकर पालि साहित्य की अनुवाद परम्परा को आगे बढ़ाया है। बुद्धदत्त द्वारा अनूदित *अट्ठकथाएँ* थीं—*उत्तरविनिच्छय, विनयविनिच्छय, अभिधम्मावतार, रूपारूपविभाग* और *मधुरत्थविलासिनी*। उधर आचरिय धम्मपाल के नाम से प्रसिद्ध *अट्ठकथा* साहित्य में *परमत्थदीपनी, नेत्तिप्पकरण अट्ठकथा* प्रमुख हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रन्थ, टीकाएँ मात्र हैं, उन्हें *अट्ठकथाओं* की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता और इस कारण वे अनुवाद-कार्य के सन्दर्भ में भी उल्लेखनीय नहीं हैं।

अनुवाद की सर्वास्तिवादी परम्परा

अनुवाद की थेरवादी परम्परा पर चर्चा करते करते हम ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दियों तक पहुँच गए। पर अनुवाद-कार्य की दृष्टि से सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सर्वास्तिवादियों की परम्परा इसी बीच की है। यह परम्परा प्रायः पहली दूसरी सदी से ही प्रारम्भ हो जाती है। उस परम्परा में सम्राट कनिष्क का काल बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसी काल में विभाषा संगीति बुलाई गई थी, जिसे इतिहासकार चौथी संगीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सर्वास्तिवाद के आगम ग्रन्थों के संगायन के लिए बुलाई गई इस संगीति में आर्य कात्यायनीपुत्र के *अभिधर्म प्रकरण* (आर्यज्ञान प्रस्थान शास्त्र) पर विभाषा (टीका) तैयार की गई, जिससे बौद्ध धर्म के इतिहास में एक नया मोड़ आया। वैभाषिक और सौत्रान्तिक नाम से दो सम्प्रदाय उठ खड़े हुए और उनका विशाल वांग्मय भी तैयार हुआ। यह वांग्मय कश्मीर, पंजाब के रास्ते मध्य एशिया के अनेक देशों में छा गया। ये ग्रन्थ सम्राट कनिष्क के काल में मध्य एशिया की अनेक भाषाओं—कश्मीरी, पश्तो, दर्दी, तोखारी, फारसी, सोग्दियन आदि में अनूदित हो गए। आचार्य वसुबन्धु द्वारा लिखित *अभिधर्मकोश भाष्य* का अनुवाद मध्य एशिया की कई भाषाओं में हुआ और उसी प्रकार *विनयपिटक* (बौद्ध आचार शास्त्र) के अनुवाद हुए। ये ग्रन्थ मध्य एशिया के रास्ते चीन तक पहुँचे। सर्वास्तिवादियों के विनय ग्रन्थों का इतना व्यापक प्रचार हुआ कि तिब्बत, मंगोलिया आदि क्षेत्रों में भी जहाँ महायान बौद्ध धर्म प्रबल था, वहाँ भी सर्वास्तिवादी विनय की ही मान्यता थी। प्रसिद्ध चीनी यात्रियों में प्रथम फाह्यान तो भारत इसी उद्देश्य से आए थे कि भारत में मूल विनय ग्रन्थों से तुलना कर विवादित मुद्दों को सुलझा सकें।

6.4 चीन में अनुवाद-कार्य

यूँ तो पिछली इकाई में बौद्ध साहित्य के चीनी अनुवाद पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, पर यहाँ प्रसंगवश चीन में बौद्ध धर्म के प्रवेश और उसके परिणाम के रूप में विशाल अनूदित वांग्मय तैयार किए जाने की संक्षिप्त चर्चा अत्यावश्यक है। चीनी स्रोतों से पता चलता है कि भारतीय बौद्ध भिक्खु तत्कालीन चीन की राजधानी शें-सी (Shen-Si) में धर्मप्रचार के लिए ई.पू. 217 में ही पहुँच गए थे। ई.पू. 122 में बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा वहाँ के सम्राट को पेश की गई थी। *चीनी विवरण ग्रन्थ* (Chinese Chronicle) के अनुसार उपासना के लिए प्रस्तुत की गई यह पहली प्रतिमा थी। इस सिलसिले में चीनी सम्राट मिंग-ती ने ई.पू. 61 (अथवा 62) में भारत में एक दूत-मण्डल भेजा था, ताकि वे बुद्ध-वचन और उसके वाचन, उपासना आदि के लिए भिक्खुदल चीन ले जा सकें। चीनी विवरण ग्रन्थ के अनुसार इस प्रयास में मध्य भारत से एक भारतीय भिक्खु—काश्यप मातंग—चीन गए और उन्होंने बयालिस (42) खण्डों वाले *बुद्ध-सूत्र* वचन का चीनी में अनुवाद किया। चीन के प्रसिद्ध शहर लो-यांग में उनका देहावसान हुआ था।

बौद्ध धर्म चीन में धीरे-धीरे जड़ पकड़ता गया और चौथी से सातवीं सदी के बीच में उसका व्यापक विस्तार हुआ। यही वह काल है जब चीनी बौद्ध विद्वान फाह्यान, युवान-च्वांग, इत्सिंग आदि और भारतीय विद्वान मुख्यतः कुमारजीव, बोधिधर्म और परमार्थ ने अनेक भारतीय बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीनी बौद्धों की संख्या बढ़ी, फलतः बौद्ध धर्म में व्याप्त मतवाद भी वहाँ फैला। प्रतिनिधि भारतीय बौद्ध सम्प्रदाय तो वहाँ पनपे ही, वहाँ की धरती पर नए सम्प्रदाय भी खड़े हुए, जिनके अपने मूल ग्रन्थ और अनूदित ग्रन्थ बड़ी संख्या में प्रकाश में आए।

चीनी भाषा में अनूदित ग्रन्थों में महान दार्शनिक नागार्जुन के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। नागार्जुन की जीवनी भी चीनी भाषा में उपलब्ध है, जिसका अनुवाद महान अनुवादक कुमारजीव ने किया था। ये वही नागार्जुन हैं जिन्हें विद्वान चीनी यात्री युवान-च्वांग ने विश्व को आलोकित करने वाले चार सूर्यों में एक कहा था। चीनी अनुवाद शृंखला में उपलब्ध बीस ग्रन्थ नागार्जुन के बताए जाते हैं। यह बात प्रसिद्ध जापानी विद्वान बुनियो नांजियो द्वारा तैयार किए गए *'कैटलॉग ऑफ दि बुद्धिस्ट ट्रेटाइजेज'* से भी सिद्ध होती है। उन ग्रन्थों में नागार्जुन के महान दार्शनिक ग्रन्थ *मध्यमक-शास्त्र* और *सुहल्लेख* उल्लेखनीय हैं।

6.5 महान अनुवादक कुमारजीव

महान दार्शनिक नागार्जुन के जीवनी-लेखक कुमारजीव (चीनी भाषा में चिउ-मो-लो-शी) स्वयं महान दार्शनिक थे। अनुवाद के क्षेत्र में उनका नाम सूर्य की तरह प्रतिभासित है। वे विश्व के महानतम अनुवादक हुए हैं। उनकी जीवनी भारत, मध्य एशिया और चीन को जोड़ने वाली महान कड़ी है, उनके पिता (कुमारायन) मध्य भारत के थे, माता मध्य एशिया के क्षेत्र के कुचा देश की थीं। कुमारजीव ने स्वयं चीन में रह कर बौद्ध धर्म और दर्शन की महान सेवा की थी।

चीनी विवरण ग्रन्थों के अनुसार सन् 405 में त्सिन वंश के महाराजा ने कुमारजीव के सम्मान में और छंगन में उनके निवास के नौ वर्ष पूरे होने पर एक अनुवाद-मण्डल बनाने का उत्सव किया, जिस अनुवाद मण्डल में आठ सौ भिक्खु और विद्वान सम्मिलित किए गए और उन्हें भारतीय बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद का कार्य सौंपा गया। उस अनुवाद अभियान में महाराजा ने स्वयं रुचि दिखाई और कुमारजीव की देखरेख में तीन सौ बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद पूरा किया गया। महान अनुवादक कुमारजीव अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक (सन् 413) अनुवाद कार्य में उसी उत्साह के साथ लगे रहे जैसा प्रारम्भ में किया था। फलतः विश्व के इस महानतम अनुवादक के धर्म प्रचार से उत्तरी चीन में अनेक बौद्ध विहार स्थापित हुए और वहाँ की आबादी के नब्बे प्रतिशत लोग बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। उनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं —

1. *महाप्रज्ञापारमिता शास्त्र* (चीनी नाम : ता-च'-तू-लुन) बुनियो नांजियो कैटेलॉग, सं. 1169
2. *शत शास्त्र* (पाइ-लुन) सं. 1188
3. *सुखावत्यमृत-व्यूह* (फो-श्वो-ओ-मि-तु-चिन) सं. 200
4. *सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र* (मिआओ-पफा-लियन-ह्वा-चिन) सं. 134
5. *महाप्रज्ञापारमिता सूत्र* (मो-हो-पान-जो-पो-लो-मि-चिन) सं 3
6. *वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्र* (चिन-कन-पान-जो-पो-लो-मि-चिन) सं. 10

कुमारजीव का जीवन विविधताओं से भरा था। लक्ष्यसिद्धि के वे बेमिसाल उदाहरण हैं। उन्होंने अपने सम्बन्धों और कार्यों से भारतीय संस्कृति को मध्य एशिया और चीन में विस्तारित किया, उसकी जड़ें इस तरह पुख्ता कीं कि आज तक उसमें कोई कमी नहीं आई।

6.6 महान अनुवादक परमार्थ (सन् 503-569)

परमार्थ उज्जैन के एक श्रमण (भिक्खु) थे। बौद्ध धर्मदर्शन की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर वे उत्तर भारत चले गए और पाटलिपुत्र में रहने लगे। उसी समय चीन के सम्राट का एक प्रतिनिधि-मण्डल मगध आया और वहाँ के राजा से ऐसे कुशल बौद्ध पण्डित की माँग की जो चीन जाकर बौद्ध धर्म दर्शन का प्रचार-प्रसार कर सके। भिक्खु परमार्थ अनेक बौद्ध ग्रन्थों के साथ समुद्र के रास्ते सन् 548 में नानकिंग पहुँचे। चीन सम्राट की इच्छानुसार वे भारतीय बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद करने लगे, लगातार दस वर्षों तक उन्होंने अनुवाद किया। उसके बाद वहाँ की राजनीतिक स्थिति के बिगड़ने से उन्हें स्थान-स्थान पर भटकना पड़ा, एकहत्तर वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। मृत्यु के समय तक उन्होंने प्रायः सत्तर बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद पूरा कर दिया था।

परमार्थ के अनुवाद कार्य को दो खण्डों में बाँटा जा सकता है। पहला खण्ड सन् 548-557 तक का है, जिसमें उन्होंने दस ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया, जो सन् 730 के आसपास तक अस्तित्व में पाए गए, उसके बाद लुप्त हो गए। दूसरा खण्ड सन् 557-569 का है, जो हान राजवंश के संरक्षण में बीता, जिसमें उन्होंने उसी प्रकार अनुवाद का कार्य किया। उनका महानतम अनुवाद कार्य *महायानसंपरिग्रह शास्त्र* का चीनी अनुवाद था और उसी के नाम पर वहाँ पर एक बौद्ध सम्प्रदाय खड़ा हो गया। भिक्खु परमार्थ द्वारा चीनी भाषा में अनूदित प्रमुख ग्रन्थ हैं –

1. *सन्धिविमोचन सूत्र,* बुनियो नांजियो कैटलॉग, सं. 151
2. *वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र,* सं. 10
3. *महायानसंपरिग्रह शास्त्र,* सं. 1183
4. *मध्यान्तभाग शास्त्र,* सं. 1248
5. *अभिधर्मकोशव्याख्या शास्त्र,* सं. 1269
6. *महायानसंपरिग्रह शास्त्र व्याख्या,* सं. 1171(2)
7. *विनयद्वाविंशतिप्रसन्नार्थ शास्त्र,* सं. 1139
8. *अष्टादशाकाश* (अथवा अष्टादश-शून्यता-शास्त्र) सं. 1187

6.7 महान अनुवादक बोधिधर्म (अथवा धर्मबोधि)

बोधिधर्म दक्षिण भारत के श्रमण (भिक्खु) थे। सन् 526 में वे चीन के लिए प्रस्थान कर गए। वहाँ पर नानकिंग में दक्षिण चीन के महाराजा लियांग-वू-ति ने पूरे आदर से उनका स्वागत किया। बोधिधर्म ने वहाँ ध्यान मार्ग स्थापित किया। ग्रन्थों के पठन-पाठन पर उनका आग्रह नहीं था। उन्होंने *महापरिनिर्वाणसूत्र शास्त्र* नामक एक ही ग्रन्थ का

चीनी अनुवाद किया। बोधिधर्म द्वारा स्थापित ध्यान (Ch'en) सम्प्रदाय का ही प्रभाव जापान पर पड़ा, वह सम्प्रदाय वहाँ ज़ेन (Zen) बन गया।

6.8 महान अनुवादक युवान-च्वांग (सन् 602-664)

युवान-च्वांग हो-नान प्रदेश के लो-यान के एक श्रमण थे, जिनको चेन-तो में सन् 622 में उपसम्पदा (अर्थात भिक्षुपन) मिली। उनको पूर्वी त्सिन राजवंश का संरक्षण प्राप्त था। युवान-च्वांग इतिहास से सम्बद्ध विवरण-ग्रन्थों के लेखन में और संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों के अनुवादक के रूप में चीन के अत्यधिक प्रसिद्ध विद्वान हुए। उन्होंने अपने कार्यकाल में पचहत्तर ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया, जो 1,335 फेसीकुली (पुलिन्दों) में फैला है।

युवान-च्वांग भारत की यात्रा पर सन् 629 में निकल पड़े और सन् 645 में चीन लौटे। उनके जीवन के अगले प्रायः बीस वर्ष अनुवाद कार्य में बीते, जिसमें उन्होंने अपने साथ लाए ग्रन्थों में से कुछ का चीनी अनुवाद पूरा किया। उनमें से सम्प्रदायवार कुछ प्रमुख ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है :

1.	महायान (ता-शान-पु)	416 ग्रन्थ
2.	थेरवाद (शांग-त्सू-पु)	14 ग्रन्थ
3.	साम्मितीय (सान-मि-ति-पु)	15 ग्रन्थ
4.	महीशासक (मी-शा-से-पु)	22 ग्रन्थ
5.	काश्यपीय (किन-शे-पि-ये-पु)	17 ग्रन्थ
6.	धर्मगुप्त (फा-मी-पु)	42 ग्रन्थ
7.	सर्वास्तिवाद (श्वो-इ-तसे-यु-पु)	67 ग्रन्थ
8.	महासांघिक (त-शुंग-पु)	15 ग्रन्थ
9.	हेतुशास्त्र (यिन-लुन)	36 ग्रन्थ
10.	शब्दशास्त्र (शेन-लुन)	13 ग्रन्थ

उक्त 657 ग्रन्थ युवान-च्वांग भारत से बाइस घोड़ों पर लाद कर चीन ले गए थे। चीनी भाषा और साहित्य के इतिहासकारों के अनुसार युवान-च्वांग के अनुवाद कार्य में कुछ संस्कृत विद्वानों का भी सहयोग था। राजाज्ञा से चीनी भिक्खु तो उसमें जुड़े थे ही। यही कारण है कि युवान-च्वांग की देखरेख में विशाल वांग्मय चीनी भाषा में अनूदित हो सका। युवान-च्वांग और उनके शिष्यों द्वारा अनूदित ग्रन्थों में प्रमुख इस प्रकार हैं :

1. *महाप्रज्ञापारमिता सूत्र*, बुनियो नांजिओ कैटलॉग, सं. 1
2. *विद्यामात्रसिद्धित्रिदश शास्त्र*, सं. 1215
3. *कर्मसिद्धप्रकरण शास्त्र*, स. 1221
4. *विद्यामात्रसिद्धि शास्त्र*, सं. 1240
5. *मध्यान्तविभागशास्त्र*, सं. 1244
6. *महायानसंपरिग्रह शास्त्रमूल*, सं. 1247
7. *अभिधर्मन्यायानुसार शास्त्र*, सं. 1265
8. *हेतुविद्यान्यायप्रवेश शास्त्र*, सं. 1216
9. *न्यायद्वारतर्क शास्त्र*, सं. 1224
10. *वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता* सूत्र, स. 13

6.9 महान अनुवादक बोधिरुचि (सन् 571-627)

बोधिरुचि दक्षिण भारत से चीन गए थे। उनका संघ-नाम धर्मरुचि था। चीन की सम्राज्ञी, वू-त्सो-थियन (सन् 684-705) ने उनका नाम बदल कर बोधिरुचि कर दिया था। कहा जाता है कि भदन्त बोधिरुचि 156 वर्ष की आयु तक जीवित रहे और 53 ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया, जो अनुवाद 111 पुलिन्दों में फैला हुआ था। भदन्त बोधिरुचि द्वारा अनूदित प्रमुख ग्रन्थ हैं :

1. *महाप्रज्ञापारमितार्धशतिका, बुनियो नांजिओ कैटलॉग,* सं. 18
2. *महारत्नकूट सूत्र,* सं. 23
3. *अमितायुषव्यूह,* सं. 23(5)
4. *समन्तमुखपरिवर्त,* सं. 23(10)
5. *विनयविनिश्चय-उपालि-परिपृच्छा,* सं. 23(24)
6. *मैत्रोयपरिपृच्छा,* सं. 23(42)
7. *महायानवज्रचूडामणिबोधिसत्त्वचर्यावर्ग सूत्र,* सं. 86
8. *रत्नमेघ सूत्र,* सं. 151
9. *महायान सूत्र,* सं. 241
10. *मंजुश्रीरत्नगर्भधारणी सूत्र,* सं. 448

भदन्त बोधिरुचि के अलावा कई और प्रसिद्ध चीनी और भारतीय आचार्य हुए जो चीनी भाषा के अनुवाद कार्य में लगे रहे और अनेक संस्कृत, पालि-प्राकृत ग्रन्थों का चीनी में भाषान्तरण किया।

6.10 तिब्बती मंगोलियाई अनुवाद परम्परा

अनुवाद की यह प्रक्रिया अनवरत चलती रही। चीन के अलावा एशिया के अन्य देशों में भी अनुवाद उद्यम का सफल पदार्पण हुआ, इस कर्म ने अपनी प्रतिष्ठापूर्ण जगह बनाई। तिब्बत, मंगोलिया, कोरिया, जापान आदि देशों का नामोल्लेख इस दिशा में सम्मान से लिया जाना चाहिए। तिब्बत में इस महान कार्य का सूत्रपात युवान-च्वांग के समकालीन और गुरुभाई थोन्मी सम्भोट द्वारा हुआ। थोन्मी सम्भोट नालन्दा महाविहार में युवान-च्वांग के सहपाठी थे। भारत आने के पहले थोन्मी सम्भोट अपने देश तिब्बत में राजा के दरबार में मन्त्री थे। राजा ने उन्हें भारत इसलिए भेजा कि वे यहाँ से भाषा, व्याकरण और लिपि सीख कर लौटें और तिब्बती भाषा में अनुवाद कार्य की शुरुआत करें। तिब्बत के राजा को इस बात की प्रेरणा अपनी चीनी पत्नी से मिली थी। थोन्मी सम्भोट के तिब्बत लौटने पर अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ। राजा अनुवाद कार्य से इतना प्रभावित हुआ कि उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली और बौद्ध धर्म को तिब्बत का राज-धर्म घोषित कर दिया।

उसके बाद तो फिर अनुवादकों की लम्बी शृंखला तैयार हुई, जिसमें विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रमुख आचार्य शान्तरक्षित, कालान्तर में दीपंकर श्रीज्ञान 'अतिश' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। इस क्रम में संस्कृत-पालि-प्राकृत के अनेक ग्रन्थों का तिब्बती अनुवाद तैयार हुआ। इन अनूदित ग्रन्थों का संकलन तार्किक और वैज्ञानिक विधि से किया गया। उदाहरण के लिए बुद्ध-वचन वाले सारे अनूदित ग्रन्थों को कंग्यूर के अन्तर्गत डाला गया और टीका आदि अन्य ग्रन्थों को तंग्यूर में। तिब्बती अनुवाद की यह भी विशेषता है कि अनूदित ग्रन्थों में अधार्मिक, सेकुलर ग्रन्थ भी शामिल किए गए, जबकि चीनी अनुवाद परम्परा में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उदाहरणस्वरूप तंग्यूर संकलन में साहित्यशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यप्रकाश का अनुवाद भी सम्मिलित है और कालिदास का मेघदूत भी। चीनी अनुवाद और तिब्बती अनुवाद की तुलना करने पर एक और विशेषता प्रकाश में आती है और वह है—तिब्बती अनुवाद की मेटाफ्रेजिंग अनुवाद विधि। ध्यान रहे कि चीनी अनुवाद में पैराफ्रेजिंग अनुवाद विधि ज्यादा प्रबल रही है।

तिब्बती भाषा में अनुवाद कार्य प्रारम्भ होने के कुछ ही समय बाद एक ऐसा दौर आया जिसमें तिब्बती बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ोसी देशों पर पड़ने लगा। उनमें सिक्किम (जो आज भारत का भाग है), भूटान, मंगोलिया आदि आते हैं। इनमें भूटान आदि में बौद्ध धर्म का प्रवेश उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि मंगोलिया में, क्योंकि मंगोलिया में हुए तिब्बती अनुवाद को मंगोलियाई भाषा में ढाला गया, जबकि भूटान आदि में ऐसा करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी।

6.11 कोरियाई जापानी अनुवाद परम्परा

भारतीय ग्रन्थों के चीनी अनुवाद के साथ एक और प्रयोग हुआ। उन अनूदित ग्रन्थों का कोरियाई और जापानी रूपान्तरण भी हुआ। यह कार्य सदियों तक चलता रहा। यह प्रयोग अनूदित पाठ के अनुवाद का है, जबकि अनूदित चीनी धर्म ग्रन्थ कोरियाई बौद्ध धर्म और जापानी बौद्ध धर्म में अपना वही स्थान रखते हैं, जो थेरवादी *पालि त्रिपिटक* थेरवादी देशों में।

मंगोलिया, कोरिया, जापान, उत्तरी वियतनाम आदि देशों में जैसे-जैसे बौद्ध सम्प्रदायों का उदय हुआ, भाषाओं और बोलियों में अनूदित, रूपान्तरित और मूल ग्रन्थ भी प्रकाश में आए, लेकिन वे आज तक चीनी अनूदित ग्रन्थों को निष्कासित नहीं कर पाए। तात्पर्य यह है कि मंगोलिया, भूटान आदि देशों में कंग्यूर और तंग्यूर की वैसी ही मान्यता है, जैसी कि कोरिया, जापान, उत्तरी वियतनाम आदि देशों में अनूदित चीनी बौद्ध धर्म ग्रन्थों की।

6.12 अनूदित कथा साहित्य

अनुवाद के इस प्रसंग में कथा साहित्य के अनुवाद की बात अभी तक छूटी-सी रही है; जबकि वह भी औरों की तरह ही महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति और साहित्य के विस्तार में अनूदित कथा साहित्य ने महान योगदान दिया है। इस कारण भारतीय साहित्य की छाप पूरे विश्व पर पड़ी है। अनुवाद की यह प्रक्रिया जातक कथाओं के अनुवाद से प्रारम्भ होती है।

बौद्ध वांग्मय का प्रधान अंग जातक है। रोचक कहानियों को पद्य और गद्य में प्रस्तुत करने की प्रथा बहुत पुरानी है। बुद्धकालीन तो है ही, जातक उनके प्रमाण हैं। ऐसा कहा जाता है कि भिक्खु महिन्द और उनके चार सहयोगी केवल *त्रिपिटक* ही ले कर श्रीलंका नहीं गए थे, अपने साथ पालि में लिखी *अट्ठकथाएँ* भी ले गए थे। उन *अट्ठकथाओं* को सिंहली भाषा और लिपि में रूपान्तरित करके सिंहल लोगों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया गया। कालान्तर में अनूदित सिंहली *अट्ठकथाएँ* लुप्त हो गईं और आगे चल कर पाँचवीं-छठी शताब्दियों में आचरिय बुद्धदत्त, बुद्धघोस और धम्मपाल द्वारा उनका पुनः पालि रूपान्तरण किया गया, यह बात पहले भी प्रसंगवश की जा चुकी है। यहाँ तो सिर्फ इतना ही कहना है कि कालान्तर में जातक कहानियों का संस्कृत रूपान्तरण हुआ, अन्य का प्राकृतों में भी हुआ।

संस्कृत में कथा-संग्रह कई नामों से प्रकाश में आए। सबसे पुराना संग्रह *बृहत्-कथा* मंजरी है जो गुणाढ्य की रचना बताई जाती है। बताया जाता है कि *बृहत्कथा* लुप्त हो गई। आगे चल कर समाज में प्रचलित कहानियों का जो संकलन प्रकाश में आया उसका नाम *कथासरित्सागर* रखा गया। इसके बाद *पंचतन्त्र* का दौर आया। *कथासरित्सागर, पंचतन्त्र* आदि की कहानियाँ उसी प्रकार अनूदित हो कर विदेशों में गईं। उदाहरण के लिए पंचतन्त्र की दो बैलों—करटक और दमनक—की कथा जब अरबी में पहुँची तो करटक-दमनक नाम *कलीला-दिमना* हो गए। इसी प्रकार के परिवर्तन अन्य कहानियों में भी हुए होंगे। ईसप की कहानियाँ, अरेबियन नाइट्स आदि विदेशों में अत्यन्त प्रचलित कहानी-संग्रहों के उपजीव्य ग्रन्थ हमारे देश के कहानी-संग्रह ही रहे हैं।

6.13 अनूदित फारसी-अरबी साहित्य

मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया से हमारे सम्बन्ध बहुत पुराने हैं; बल्कि प्रागैतिहास काल से कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका कोई क्रमबद्ध इतिहास तैयार नहीं किया गया। हमें छिटपुट सूचनाओं के आधार पर ही अपनी बात कहनी पड़ेगी। यों तो कहानी संग्रहों के अनुवाद-संग्रहों का थोड़ा-बहुत जो साहित्य मिलता है, उससे भी अन्दाज लगाया

जा सकता है कि अनुवाद के माध्यम से सम्बन्ध दृढ़ रहे हैं। ईसाई स्रोतों से प्रकट है कि ईसाई मिशनरी भारत के पश्चिमी तटों पर व्यापार मार्ग के रास्ते पहली सदी में ही आ चुके थे। उन्होंने धर्म प्रचारार्थ क्षेत्रीय बोलियों का उपयोग किया और उनमें धर्मग्रन्थ अनूदित किए। आज साक्ष्यों के अभाव में स्पष्ट कह पाना तो कठिन है कि कौन-कौन से ग्रन्थ अनुवाद के दायरे में लाए गए थे। यही बात इस्लाम के उदय होने पर भी हुई है। इस्लाम के प्रकाश में आने के थोड़े समय में ही व्यापार के रास्ते ईस्लामी साहित्य पश्चिमी तटों पर पहँच चुका था। कालान्तर में उस साहित्य के अनुवाद हुए और लोगों तक पहुँचाए गए।

मध्य युग में जब मुस्लिम शासकों के राजकाज की भाषा फारसी बन गई तो भारतीय भाषाओं से फारसी में और फारसी भाषा से भारतीय भाषाओं में अनुवाद क्रमबद्ध तरीके से होने लगे। प्रसिद्ध विद्वान अलबरूनी के माध्यम से अध्ययन और अनुवाद कार्य पर्याप्त मात्रा में हुए थे। यहाँ तक कि शहंशाह अकबर ने रामायण-महाभारत जैसे हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद के लिए अनुवाद ब्यूरो कायम किए थे, जिसमें वे स्वयं अपने निरीक्षण में अनुवाद कार्य कराते थे। साहित्य-सृजन भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। शहंशाह शाहजहाँ के काल में शाहजादा दाराशिकोह ने अनुवाद कार्य में बेइन्तहा (असीम) रुचि ली और संस्कृत ग्रन्थों, खासकर उपनिषदों के अनुवाद फारसी में हुए। अन्य अनुवादकों ने भी यह कार्य किया किन्तु दुर्भाग्य से उन सबका क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सका। उसका एक कारण यह भी था कि मध्य युग के अधिकांश लेखक और भाषाविद् आम लोगों से मिलना जुलना भी पसन्द नहीं करते थे। यही कारण है कि दूरियाँ बढ़ गई थीं।

6.14 आधुनिक काल में अनुवाद

औद्योगिक क्रान्ति के बाद से यूरोपीय विद्वानों का ध्यान एशियाई देशों की भाषा, संस्कृति, कला और साहित्य पर पड़ा। उन्होंने अनुवाद कार्य तो किया ही, साथ-साथ अनुवाद की नई विधाएँ भी ईजाद कीं। एशियाई विद्वानों ने इन विधाओं का उपयोग एशियाई भाषाओं के सन्दर्भ में किया। भारतीय, चीनी, ईरानी, अरबी, मध्य एशियाई विद्वानों ने अनेक भाषाओं से अनुवाद कार्य प्रारम्भ किया और इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की। सन् 1950 में भारत की आजादी के तुरन्त बाद प्रधनमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एशियाई देशों के राजप्रमुखों का सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। उस सम्मेलन ने एशिया के देशों के बीच अनुवाद कार्य को अद्‌भुत प्रोत्साहन दिया। फलतः प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों का अनुवाद भी एशिया की कुछ भाषाओं में प्रारम्भ हुआ। उदाहरण के लिए रामायण, महाभारत का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की चीन यात्राओं ने भी अनुवाद कार्य को गति दी।

महान अनुवादक युवान-च्वांग के अवशेषों को भारत लाया गया और नालन्दा में उन्हें स्थापित किया गया, उनके नाम पर भवन का निर्माण हुआ और प्रत्यनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ।

इस्लाम धर्मावलम्बियों के मूल धर्मग्रन्थ *कुरान शरीफ* का अनुवाद भारत की प्रायः सभी प्रधान भाषाओं में हो गया। *पालि त्रिपिटक* का अनुवाद भारत की कुछ भाषाओं में हो गया और यह कार्य अभी भी चल रहा है। प्रशासकीय, राजकीय अभिलेखों आदि के अनुवादों का जो सिलसिला चल रहा है उसका वर्णन कर पाना तो असम्भव काम है। अतः पूरे अनुवाद कार्य का एक विहंगम सर्वेक्षण करने पर ऐसा लगता है कि अगली सदियाँ अनुवाद की रेलगाड़ियों पर सरपट भागेंगीं।

एशियाई अनुवाद परम्परा का यह विवरण परिचयात्मक है। यह सम्पूर्ण नहीं है, यह एकांश मात्र है। जगह-जगह बिखरी सूचनाओं को इकट्ठी कर पाठ का एक रूप दिया गया है।

6.15 सारांश

भाषान्तरण के अर्थ में अनुवाद का प्राचीन प्रयोग हमें बौद्ध वांग्मय में मिलता है। गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को ज्ञान की बातें अपनी-अपनी भाषा या बोली में अनूदित करके जानने और समझने की प्रेरणा दी। इस निर्णय ने अनुवाद में क्रान्ति पैदा कर दी। शायद यही कारण हो कि थोड़े ही समय में बुद्ध-वचन एशिया की अनेक भाषाओं में उपलब्ध होने लगे।

अनुवाद की परम्परा में बुद्ध के प्रमुख शिष्य यमेळु-तेकुल, तपुस-भल्लिक के अलावा महाकच्चायन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। महाकच्चान मगध-कोसल की भाषाओं के जानकार और अवन्ति देश की भाषा के पण्डित थे, साथ ही वे सूत्र में कही हुई बुद्ध की बातों का अन्वय कर विस्तार के साथ समझाने में कुशल थे। भिक्खु पुण्ण इस दिशा में अविस्मरणीय नाम है। *पुण्णोवाद सुत्त* का उपदेश बुद्ध ने उन्हीं को लक्ष्य करके किया था।

सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त मौर्य के बीच सन्धि के कारण विजित क्षेत्रों में आदान-प्रदान का माध्यम अनुवाद ही रहा होगा। धर्मप्रचार के अनेक प्रतिनिधि-मण्डल अनेक देशों में सम्राट अशोक ने भेजे थे, उनकी कार्य-प्रणाली का आधार अनुवाद ही रहा होगा।

धर्मप्रचारक भदन्त महिन्द के दल में कुछ उत्कली व्यापारिक संगठनों से जुडे थे, जिनका सम्बन्ध श्रीलंका से स्थापित था। फलतः बौद्ध धर्म का प्रचार कार्य बड़ी तेजी से हुआ। इसके पीछे राजप्रश्रय भी सहायक रहा होगा।

चौथी-पाँचवीं सदी के महान अट्ठकथाकार आचरिय बुद्धघोस की अट्ठकथाओं के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि उन्होंने कई प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का या तो पालि में अनुवाद किया या फिर उनसे प्रभूत सामग्री लेकर अपनी अट्ठकथाओं में उनका उपयोग किया।

चीनी भाषा में अनूदित ग्रन्थों में महान दार्शनिक नागार्जुन के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। उनके जीवनी-लेखक कुमारजीव विश्व के महानतम अनुवादक हुए हैं। उनकी जीवनी भारत, मध्य एशिया और चीन को जोड़ने वाली महान कड़ी है, वे भारतीय थे। कुमारजीव ने चीन में रह कर बौद्ध धर्म और दर्शन की महान सेवा की थी। इस क्रम में परमार्थ, बोधिधर्म, युवान-च्वांग हो-नान प्रदेश के लो-यान के एक श्रमण थे, जिनको चेन-तो में सन् 622 में उपसम्पदा (अर्थात भिक्षुपन) मिली। उनको पूर्वी त्सिन राजवंश का संरक्षण प्राप्त था। युवान-च्वांग, बोधिरुचि आदि महान अनुवादकों का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। बौद्ध साहित्य के अनुवाद की दिशा में तिब्बती मंगोलियाई अनुवाद परम्परा एवं कोरियाई जापानी अनुवाद परम्परा के सूक्ष्म जानकारी की परम आवश्यकता है।

बौद्ध वांग्मय का प्रधान अंग जातक है। रोचक कहानियों को पद्य और गद्य में प्रस्तुत करने की प्रथा बहुत पुरानी है। कहा जाता है कि भिक्खु महिन्द और उनके चार सहयोगी केवल त्रिपिटक के साथ-साथ पालि में लिखी अट्ठकथाएँ भी श्रीलंका ले गए थे। उन अट्ठकथाओं को सिंहली भाषा और लिपि में रूपान्तरित करके सिंहल लोगों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया गया। कालान्तर में अनूदित सिंहली अट्ठकथाएँ लुप्त हो गईं और आगे चल कर पाँचवीं-छठी शताब्दियों में आचरिय बुद्धदत्त, बुद्धघोस और धम्मपाल के द्वारा उनका पुनः पालि रूपान्तरण किया गया, कालान्तर में जातक कहानियों का संस्कृत रूपान्तरण हुआ, अन्य का प्राकृतों में भी हुआ।

एशियाई अनुवाद परम्परा का यह परिचयात्मक विवरण अनुवाद सम्बन्धी सूत्रों का संकेत देता है।

6.16 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्राचीन एशियाई सन्दर्भ में बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद विषय की व्याख्या कीजिए।
2. चीन एवं एशियाई देशों में अनुवाद-कार्य की परम्परा का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
3. कार्यों के उल्लेख सहित इन विद्वानों का परिचय दीजिए :
   कुमारजीव, परमार्थ, बोधिधर्म (अथवा धर्मबोधि), युवान-च्वांग, बोधिरुचि
4. बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद के मद्देनजर निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए :
   तिब्बती मंगोलियाई अनुवाद परम्परा, कोरियाई जापानी अनुवाद परम्परा, अनूदित कथा साहित्य, अनूदित फारसी-अरबी साहित्य

6.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- नगेन्द्र, (सं.), *अनुवाद विज्ञान,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान,* दिल्ली, शब्दकार।
- पालीवाल, रीतारानी, *अनुवाद की सामाजिक भूमिका,* दिल्ली, सचिन प्रकाशन।
- वधान, अमर सिंह, *अनुवाद और संस्कृति,* अहमदाबाद, त्रिवार्ण प्रकाशन।
- सिंहल, ओमप्रकाश, *अनुवाद से संवाद,* अहमदाबाद, अवनी प्रकाशन।
- J.C. Catford, *Linguistic Theory of Translation.*
- George Steiner, *After Babel: Aspects of Language & Translation*, OUP, New York & London, 1975.
- Peter Newmark, *Approaches to Translation.,* 1981.
- Sujit Mukherjee, *Translation as Discovery*, Orient Longman, Hyderabad, 1994.
- Tejswini Niranjana, *Sitting Translation*, Hyderabad, Orient Longman.
- R. Raghunath Rao, *The Art of Translation,* Delhi, Bhartiya Anuvad Parishad.
- Susan Bassnett & Ande Lefvere, *Translation/History/Culture.,* Publishers, London, 1990.
- Susan Bassnett, *Translation Studies.*, Routledge, London & New York, 1988.
- Anuradha Dinwaney & Carol Maier, (Ed.), *Between Languages & Culture (Translation and Cross.Culture Texts)*, OUP, Delhi, 1996.
- Spivak, Gayatri Chakraborty, *The Politics of Translation,* Routledge, London & New York, 1992/2000.
- Hardwick, Lorna, and St. Jerome, *Translating Words, Translating Culture*, Pub. Co. 2000.
- Moore, N. Cornelia and Lower, Lucy, *Translation East and West: A Cross.Cultural Approach*, University of Hawaii and East-West Centre.